Chap - 5

पंचम् अध्याय

महानगरीय परिवेश और मानसिक दबाव

:: पंचम अध्याय ::

:: महानगरीय परिवेश और मानसिक दबाव ::

प्रास्ताविक :

महानगरीय परिवेश के जीवन में जहाँ कुछ सुविधाएं और×× और उन्मुक्ततायें हैं, राहें हैं, वहाँ अनेक परेशानियाँ भी हैं। महानगरीय जीवन आपाधापी और दौड़धूप का जीवन है। मनुष्य "यंत्रमानव" (रोबोट) होता जा रहा है। मनुष्य का जीवन मानो घड़ी के काँटों से बंध गया है। ज़रा भी इधर-उधर होने की कोई गुंजाइश नहीं है। बम्बई जैसे महानगरों में कई बार व्यक्ति बड़े तड़के घर से निकल जाता है और देर रात घर पहुँचता है। अपने बच्चों को जागृत अवस्था में तो वह सिर्फ छुट्टी वाले दिन ही देख पाता है। फिर एक छुट्टी होती है और हफ्ते-भर के पड़े हुए ढेर काम होते हैं। छुट्टी का दिन उन कामों को निपटाने

में व्यतीत हो जाता है । इस प्रकार मनुष्य कोल्हू के बैल के मानिंद घूमता जाता है, घूमता जाता है । जो लोग कल-कारखानों में काम करते हैं, उनका काम भी बड़ा " मोनोटोनस " प्रकार का होता है । पहले कारीगर किसी चीज का निर्माण करते थे तो उसमें निर्माण-जन्य आनंद या कला-कौशल्य-जन्य आनंद मिलता था, परंतु अब कल-कारखानों में एक चीज कई-कई पुर्जों में होती हैं और एक व्यक्ति को केवल एक ही पुर्जे को देखना होता है, अतः यह काम भी एक ही प्रकार का होने से उसमें निर्माण की कोई आनंद नहीं होता । फलतः उसके करने में मशीन के साथ मनुष्य भी मशीनवत हो जाता है ।

ग्राम्य-जीवन कृषि से जुड़ा हुआ है । उसमें व्यक्ति को बीच-बीच में कुछ फुरसद मिल जाती है । महानगरीय जीवन में इस प्रकार की फुरसद का कोई अवकाश नहीं है । किसीके यहाँ कई-कई दिन तक मेहमान बनकर जाना, या मेहमान का अपने यहाँ रहना, यह महानगरीय जीवन में संभव नहीं है । मध्यवर्ग और निम्नवर्ग के लोगों के मकान इतने छोटे होते हैं कि दूसरे के लिए कोई स्थान नहीं होता । कहा गया है कि शहर में रोटला मिल सकता है, पर ओटला नहीं । अभिप्राय यह कि एक बार खाने को मिल सकता है, पर रहने के लिए कोई स्थान नहीं मिलता । इन सब कारणों से महानगरीय मनुष्य के जीवन में घुटन और ऊब दृष्टिगत होती है, जिससे उसके मन पर बड़ा बुरा असर पड़ता है ।

ग्रामीण जीवन में जितने उत्सव और तीज-त्यौहार होते हैं, उतने महानगरीय जीवन में नहीं होते । अतः "सब दिन होते एक समाना " वाली स्थिति भी मानव-मन पर बुरा प्रभाव डालती है । परिवार भी सिकुड़कर बहुत छोटे हो गये हैं । व्यक्ति से सामाजिक भाव लुप्त हो जाते हैं । वह नितान्त स्वकेन्द्री और स्वार्थी होता जाता है । उस पर एक प्रकार की अनिश्चितता एवं अनिश्चिंतता के के भाव मंडराया करते हैं । कई प्रकार ची-ची, पों-पों के कारण

उसका दिमाग भी चिड़चिड़ा हो जाता है । इन सब कारणों से महानगरीय व्यक्ति का जीवन नाना प्रकार की मानसिक व्याधियों का शिकार होता है । मानसिक दबाव के कारण रक्तचाप , हार्टफेल , ब्रेन-हेमरेज , डायाबिटीज जैसी बीमारियाँ उसे दबोच लेती हैं ।

युग्मक और एकक परिवार का व्यक्ति-जीवन पर असर :

पूर्ववर्ती अध्यायों व पृष्ठों में युग्मक तथा एकक परिवार की चर्चा की गई है । महानगरों में जो जीवन-शैली है , उससे वहाँ संयुक्त-परिवार प्रथा चल नहीं सकती । प्रायः परिवार अब युग्मक या एकक वाली स्थिति में आ गये हैं । परिवार की व्याख्या ही अब सिमट गई है । अब परिवार में पति-पत्नी और बच्चे आते हैं । जहाँ पति-पत्नी या एकाध बच्चा हो उसे हम युग्मक परिवार ही कहेंगे ।

महानगरीय परिवेश के कई उपन्यासों में हमें ऐसे युग्मक परिवार मिलते हैं । पति-पत्नी के अतिरिक्त किसी तीसरे का वहाँ कोई दखल नहीं होता । अब जब दो ही व्यक्ति हमेशा-हमेशा एक ही छत के नीचे रहेंगे , तो उनमें ऊब भी पैदा हो सकती है , झगड़े भी हो सकते हैं । पहले व्यक्ति जब संयुक्त-परिवार में रहता था , तब मन-मुटाव या झगड़े वाली स्थिति में कोई-न-कोई बीच-बचाव करने वाला होता था , सलाह-सूचन देने वाला होता था । अतः पारिवारिक-जीवन में एक प्रकार का संतुलन पाया जाता है । परंतु अब युग्मक-परिवार में कोई किसीको न कहने वाला है , न समझाने वाला है । परिणाम कलह और क्लेश । पति-पत्नी अकेले रहते हैं । पति नौकरी करता हो उस स्थिति में भी और दोनों नौकरी करते हों उस स्थिति में भी दोनों का बहुत सारा समय अकेले बिताता है । ऐसी स्थिति में वे दोनों परस्पर शंकित रहते हैं । उनके मन में एक काल्पनिक भय रहता है कि उनका यह एकान्त उनके दाम्पत्य-जीवन को कहीं डस न

जाए। और ऐसा अनेक उपन्यासों में हम देखते हैं।

कान्ता भारती कृत "रेत की मछली" की कुंतल की जो समस्या है, वह युग्मक-परिवार के कारण है। शोभन अपनी विकृत काम-लीलाएँ इसलिए कर सकता है कि उसके और कुंतल के अलावा उनके परिवार में कोई तीसरा नहीं है। परिवार में माँ-बाप होते, भाई-बहन होते तो वह ऐसा कई-कई नहीं कर सकता था। कुंतल के रहते वह शीनल को लाता है, शीनल का सिर कुंतल की गोद में रखकर उसके साथ संभोग करता है। उसे निर्वस्त्र करके आलिंगन देता है। उस समय कुंतल के मनो-मस्तिष्क पर क्या गुजरती होगी? वह किस प्रकार के मानसिक त्रास का अनुभव कर रही होगी? उसने अपना मानसिक-संतुलन किस प्रकार बनाए रखा होगा? ऐसे प्रश्न उभरते हैं। पर इतना तो निश्चित है कि इसके कई कारणों में एक मुख्य कारण युग्मक-परिवार है।

"अँधेरे बन्द कमरे" में हरबंस-नीलिमा का परिवार भी युग्मक की कोटि में आता है। नीलिमा की बहन शुक्ला है, पर वह स्थायी सदस्य नहीं है। ऐसी स्थिति में हरबंस-नीलिमा में जब भी मन-मुटाव होता है, कोई मध्यस्थी नहीं होता। परिवार में ऐसा मध्यस्थी बफर का काम करता है। इससे हरबंस-नीलिमा में कई-कई दिनों तक बोलने तक के संबंध नहीं रहते। उनका भिन्न-वर्तुल है। परंतु यह महानगरीय उच्चवर्ग के लोग ग्रामीण या मध्यवर्गीय या निम्नवर्गीय जैसे खुले नहीं होते। अपनी बात दूसरों से कहने में उनका यह आभिजात्य बीच में आता है। अतः उनके बीच एक प्रकार का शीत-युद्ध चलता रहता है। यह शीत-युद्ध शीत-संबंधों को जन्म देता है। यह पति-पत्नी की उदासीनता उनके जीवन में तनाव पैदा कर सकता है।

"आपका बण्टी" में अजय और शकुन का परिवार भी एक प्रकार से युग्मक की कोटि में आता है । बण्टी है, पर वह बहुत छोटा है । दूसरे उसके पैदा होने से पूर्व ही इन दोनों में तनाव की स्थिति पैदा हो चुकी थी । एक बूढ़ी मौसी है, पर वह आया है । उसका शकुन पर कोई प्रभाव नहीं है । वकील चाचा हैं, पर वे कभी-कभार आते हैं । अतः अजय-शकुन की गाड़ी जब पटरी से उतर जाती है, तब उनको समझाने-बुझाने वाला कोई नहीं होता और अन्ततः उनका सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है । शशिप्रभा शास्त्री कृत " सीढ़ियाँ " में भी यही स्थिति है ।

"तीसरा आदमी " नरेश-चित्रा के पीड़ित दाम्पत्य की कथा है । यहाँ नरेश-चित्रा दिल्ली में सुमन्त के साथ रहने के लिए विवश हैं । सुमन्त नरेश का एक दूर का भाई है । नरेश का तबादला इलाहाबाद से दिल्ली हो जाता है । अपनी आर्थिक विवशताओं के कारण दिल्ली में अलग मकान रखकर वह नहीं रह सकता । उसे अपने भाई सुमन्त के साथ मकान "शेयर" करना पड़ता है । नरेश की नौकरी ऐसी है कि उसे कई बार लम्बे दौरों पर जाना पड़ता है, तब चित्रा-सुमन्त के एकान्त को लेकर नरेश मानसिक रूप से परेशान रहता है । उसका मन इन दोनों को लेकर निरंतर शंकाग्रस्त रहता है । और न केवल नरेश, बल्कि चित्रा और सुमन्त भी इन बुरे दिनों में असहजता का अनुभव करते हैं । ऐसे किसी दौरे से आने पर चित्रा और सुमन्त उस बिल्ली वाले प्रसंग को बारबार दोहराते हैं जिससे यह झलकता है कि उन दिनों कमरे में नहीं, अपितु कमरे के बाहर सोया था । 2

इस प्रकार संशय का यह भुजंग नरेश-चित्रा के दाम्पत्य जीवन को डंस लेता है । शेक्सपियर का एक वाक्य है — "Our doubts are traitors" — संशय हमेशा प्रवंचक होता है । संशय का कीड़ा हमारे जीवन-सुख को खा जाता है । गुजराती के कथाकार

मोहम्मद गांडाह ने इसी विषय पर एक उपन्यास व कहानी लिखे हैं ।[3] पर नरेश की चित्रा-सुमन्त के संबंधों को लेकर जो शंका-कुशंकाएं होती हैं, उनमें महानगरीय परिवेश और युग्मक-परिवार की स्थिति भी कारणभूत है ।

"बैसाखियोंवाली इमारतें", "अन्तराल", "बेघर", "टूटा हुआ इन्द्रधनुष" ‖ मंजुल भगत ‖, "अकेला पलाश" आदि उपन्यासों में दाम्पत्य-खंडन या दाम्पत्य-शीत-संबंध पाये जाते हैं, इनमें यह युग्मक-परिवार वाली स्थिति कहीं-न-कहीं जवाबदेह है, ऐसा कहा जा सकता है ।

युग्मक-परिवार की भाँति एकक-परिवार भी महानगरीय तनाव और मानसिक दबाव को बढ़ाता है । ऊपर "तीसरा आदमी" का जो जिक्र किया है, उसमें सुमन्त की स्थिति एकक-परिवार की है । वह अकेला रहता है । उसके साथ उसके भाई-बहन होते तो कदाचित वह नौबत ही न आती ।

एकक-परिवार के कारण जो वैयक्तिक स्वच्छंदताएं और यौन-उन्मुक्तताएं विकसित होती हैं, उनसे भी तनावग्रस्त स्थितियों का निर्माण होता है । शिवानी कृत "कृष्णकली" उपन्यास की कृष्णकली में जो उन्मुक्तता और बेतरतीबी पाई जाती है, उसके पीछे उसकी एकक-स्थिति उत्तरदायी है । उसी लड़की कली को जब भी पारिवारिक वातावरण मिला है, उसमें तरतीब और अनुशासन मिलता है । ऐसा पारिवारिक वातावरण उसे विवियन की आण्टी और पहाड़ी परिवार में मिलता है ।

एकक-परिवार वाले पुरुष प्रायः स्वस्थ सामाजिक जीवन के लिए खतरा बन जाते हैं । अपनी मान्यताओं और जीवन-शैली के कारण कदाचित् उनका जीवन तो व्यतीत हो जाता है, परंतु कई बार ऐसे एकक-पुरुष अनेक लोगों के जीवन में विष घोलते हैं । "डाक बंगला" का मि. बतरा ऐसा एकक-परिवार का सदस्य

है । इरा के प्रेमी विमल को मि. बतरा और इरा के संबंधों को लेकर जो शंका होती है, वह मि. बतरा की जो छवि थी बाहर तथा समाज में उसके कारण है । हालांकि जिस समय विमल इरा पर शंका करता था, उस समय तो ऐसी कोई बात नहीं थी । इरा और मि. बतरा का संबंध तो बाद में हुआ, जब विमल इरा को छोड़कर मुंबई चला गया और वहां उसे जाली-नोट छापने वाले गिरोह में शामिल होने के कारण बारह साल की कैद हो गयी । मि. बतरा का जो व्यवसाय है, उसके कारण अनेक युवतियां उसके जीवन में आती हैं या यों कहें कि अनेक युवतियों को वह फंसाता है । इरा और शीला का तो उल्लेख उपन्यास में हुआ ही है । जिस प्रकार इरा जैसी भावुक और संवेदनशील युवती को वह फंसाता है, उसे ऊंचे-ऊंचे ख्वाब दिखाता है, विवाह का वादा करता है, इरा के स्वप्न को पूरा नहीं होने देता, उसे मां नहीं बनने देता, धोखे से उसके गर्भ को गिरा देता है । उसके कारण इरा की ज़िन्दगी तो बरबाद हो ही जाती है । इरा के जीवन की जो घुटन और टूटन है, उसे कमलेश्वर ने उपन्यास के अन्त में एक ही वाक्य द्वारा व्यंजित कर दिया है — " चलो भाई ड्राइवर, चलो ... "[5]

"पतझड़ की आवाजें" का सी.के. भी युवतियों को फांसने की कला में माहिर है । वह अपनी पोजिशन का फायदा उठाते हुए उषा जैसी लड़कियों को प्रमोशन की लालच देकर अपने चंगुल में ~~फंसाती~~ फंसाता है । अनुभा और सुनीता नहीं फंसी । अतः योग्यता के बावजूद उनको निम्न ग्रेड में रहना पड़ता है । यहां फिर ~~उसके~~ उनमें एक दूसरे प्रकार का फ्रस्ट्रेशन दृष्टिगोचर होता है । जो लड़कियां नहीं फंसतीं उनमें एक दूसरे प्रकार का तनाव पाया जाता है । उनको बारबार यह लगता है कि उन्हें उनकी योग्यता का उचित मुआवज़ा नहीं मिल रहा है । उषा जैसी लड़कियों से चिढ़ और नफ़रत उन्हें असहज बना देती है, जिसके कारण वे निरंतर टूटती जाती हैं और मानसिक तनाव को महसूस करती हैं ।

" मछली मरी हुई " के निर्मल पद्मावत में भी जो घुटन, संत्रास और पीड़ा है, वह उसके एकाकी होने के कारण है। बचपन में ही उसकी माँ उसे बेघर करके एक ड्रायवर के साथ भाग गयी थी। इस घटना का बड़ा बुरा प्रभाव उसके बाल-मानस पर पड़ता है कि नारी-मात्र से वह नफरत करने लगता है और ऐसा व्यक्ति कभी ग्रंथि रहित नहीं हो सकता।

"पचपन खंभे लाल दीवारें" की सुषमा का तो भरा-पूरा परिवार है, परंतु वे अलग अपने कस्बे में रहते हैं। सुषमा तो दिल्ली में अकेली ही रहती है। इस प्रकार प्रकारान्तर से सुषमा की स्थिति एकक परिवार-सी हो है। वह नील नामक एक युवक को चाहने लगती है। भावना के प्रवाह में बहने लगती है। नील के बिना उसे अपना अस्तित्व शून्य लगने लगता है। परंतु जब ठोस वास्तविकता अपना विकराल रूप लेकर उसके सामने आती है, तो सुषमा टूट जाती है। वह जिस कालेज में प्राध्यापिका है वहाँ की आचार्या के पास सुषमा की शिकायत पहुँचती है। नील और नौकरी में से उसे नौकरी पसंद करना पड़ता है। एक तरफ नील है, एक तरफ परिवार। एक तरफ प्रेम है, एक तरफ कर्तव्य। श्रेय और प्रेय में, अंततः वह श्रेय का ही वरण करती है। इस संदर्भ में कुंवर नारायण का अभिमत है -" किसी भी स्तर पर जीते हुए वे [उषाजी के नारी-पात्र] विवेक के तरफदार हैं, मानो लेखिका इस तथ्य के प्रति बराबर सचेत हैं कि विकासशील जीवन-मूल्य मनुष्य की इच्छा-क्षमता से अधिक उसकी चिन्तन-क्षमता पर निर्भर करते हैं।"[5]

परन्तु इसके कारण सुषमा में घुटन भी आती है। उसको उसका एकाकीपन खाने को दौड़ता है। सुषमा के इस नैराश्य का चित्रण लेखिका ने इन शब्दों में किया है —" जीवन की भागदौड़ और आजीविका के प्रश्नों में चुपचाप विलीन हो गये दो वर्ष — और अब तो उसके चारों ओर दीवारें खींच गयी थीं,

दायित्व की, कुण्ठाओं की, अपने पद की गरिमा और परिवार की। ... कभी-कभी उसका मन न जाने क्यों डूबने लगता। अपने परिवार का सारा बोझ अपने सिर ऊपर लिए सुधमा काँपने लगती। तब वह चाह उठती कि दो बाहें उसे भी सहज सहारा देने को हों। इस नीरवता में कुछ अस्फुट शब्द उसे भी सम्बोधन करें।" [6]

इसी प्रकार का नैराश्य और टूटन हमें "टेराकोटा" की मिति में भी परिलक्षित होता है। मिति के सामने भी पारिवारिक उत्तरदायित्वों का पहाड़ है। एक विधवा बहन शोभा है। माँ को समझा-बुझाकर उसका विवाह प्रकाश नामक एक आदर्शवादी युवक से करवा देती है। दूसरी बहन उमा को डाक्टर और भाई राम को इंजीनियर बनाती है। उमा की शादी डा. नरेश के साथ करवाती है। पर इन सबमें वह निरंतर टूटती गई है। उसका एकाकीपन उसे भीतर से खोखला बना देता है और इसीलिए उमा की शादी के समय उसे दौरा पड़ता है। उमा की विदा के समय भी अचानक गायब हो जाती है और फिर दूसरे स्टेशन पर जाकर नव-दम्पति को आशीर्वाद देती है। ऐसा वह इसलिए करती है कि कदाचित वह खुलकर रो लेना चाहती है। मिति हिम्मत और साहस से अपने घर-परिवार के दायित्वों का बोझ संभालती तो है, पर फिर ? फिर वही एकाकीपन। ऊँचे पद की गरिमा को ढोते जाना। व्यस्तता और दौरों में स्वयं को डुबोये रखना। पर फिर रात के वीराने में वही भाँय-भाँय, साँय साँय। अतः दायित्व-निर्वाह का संतोष होते हुए दाम्पत्य-जीवन को न जी पाने का दंश उसे मानसिक कुण्ठा असहज बना देते हैं। ऐसे लोग कालान्तर "हाई बी.पी." के शिकार हो सकते हैं।

मिति की इस स्थिति के पीछे भी उसका एकाकीपन एक कारण है। ऊँचे पद के कारण नौकर-चाकर हैं। पर एकांत के क्षणों में आँसू पोंछने वाला कोई नहीं। भविष्य का भयावह

चिन जब उभरकर सामने आता है तो दिल बैठने लगता है । इस संदर्भ में डा. चन्द्रकान्त देसाई के निम्नलिखित विचार ध्यातव्य रहेंगे —

" आधुनिक शिक्षित नारी अब आर्थिक दृष्टि से पिता, भाई आदि पर निर्भर नहीं है, बल्कि कई बार परिवार में ज्येष्ठ पुत्र के न रहने पर उसे ही अपने परिवार का बोझ उठाना पड़ता है । उम्र का एक दौर तो यौवन-सुलभ आदर्शवादी भावुकता में गुजर जाता है, परन्तु माता-पिता के काल-कवलित हो जाने पर, साथी-संगियों के आगे निकल जाने पर, भाई-भाभी के साथ "एडजस्ट" न हो पाने पर, निर्मम एकाकीपन का अजगर समूचे अस्तित्व को निगलने लगता है । अंग्रेजी में कहा गया है — "Man wants Continuity" अर्थात् मनुष्य सातत्य चाहता है । सब अपनी वृद्धावस्था में अपने युवा पुत्र-पुत्रियों, पोता-पोतियों या नातियों में अपने मन को रमा लेते हैं । परन्तु वह नारी जो किसी भी कारण से अविवाहित रह गई है, अपनी उत्तरावस्था में घुटन, पीड़ा एवं संत्रास की अँधेरी अन्तहीन सुरंगों से गुजरती है ।"[7]

कहने का अभिप्राय यह कि एकल-परिवार के मानसिक दबाव, मानसिक ग्रन्थियाँ और मानसिक परेशानियाँ बढ़ रही हैं और परिणामतः व्यक्ति अनेक मानसिक व्याधियों की चपेट में आ रहा है । सामान्य सर्वेक्षणों से यह ज्ञात हुआ है कि ग्राम्य, नगरीय एवं महानगरीय परिवेश में मानसिक दबाव की प्रवृत्ति क्रमशः बढ़ती गई है ।

असुरक्षा की भावना :

महानगरीय जीवन में व्यक्ति सामाजिकता से वैयक्तिकता की ओर संक्रमित होता है । ग्राम्य और कस्बाई परिवेश में अभी भी संयुक्त-परिवार प्रथा प्रवर्तमान है । संयुक्त परिवार में सुख-दुःख सभी संयुक्त होते हैं । कोई समस्या खड़ी होती है तो उसका

समाधान सभी मिल-बैठकर ढूंढते हैं । दूसरे बड़े-बूढ़े-बुजुर्ग लोग होते हैं , अतः घर के दूसरे सदस्यों को राहत रहती है । उन पर किसी प्रकार का मानसिक बोथरेशन नहीं होता । परंतु नगरों तथा महानगरों में अब संयुक्त-परिवार प्रथा चरमराने लगी है , और उसके स्थान पर युग्मक-परिवार और एकल-परिवार अस्तित्व में आ रहे हैं । इसके कारण वैयक्तिक-स्वतंत्रता बढ़ रही है और लोग कुछ राहत का अनुभव भी कर रहे हैं , परन्तु दूसरी ओर असुरक्षा की भावना भी बढ़ रही है ।

पहले व्यक्ति के साथ उसका परिवार , उसकी जाति-बिरादरी के लोग , गांव-मुहल्ले के लोग , उसके सुख-दुःख में साथ खड़े रहते थे ; परन्तु महानगरीय परिवेश में व्यक्ति इन सबसे कट रहा है । स्वार्थी और स्वकेन्द्रित हो रहा है । हिमांशु श्रीवास्तव कृत "नदी फिर बह चली " का जगलाल शहर जाकर ड्रायवर हो गया है । उसकी पत्नी परबतिया गांव में अपने जेठ-जिठानी के साथ रहती है । जग-लाल जब गांव आता है , तब परबतिया उसे समझाती है कि उसे जेठजी को नियमित कुछ पैसे भेजने चाहिए । तब जगलाल जो बात करता है उसमें स्वार्थी और स्वकेन्द्री मनोवृत्ति झलकती है । पहले लोग भाई के बच्चों को अपने ही बच्चे समझते थे , परंतु जगलाल कहता है कि भैया के तीन बच्चे हैं , फिर भाभी अलग । इस प्रकार उनका परिवार पांच व्यक्तियों का है , और उसके परिवार में अकेली परबतिया है ।[8] यह जो हिसाब-किताब वाली मनोवृत्ति आयी है , वह महानगरीय जीवन का प्रभाव है । इसी उपन्यास में बाबू कैलाशनाथ का परिवार इन महानगरीय परिस्थितियों के कारण अन्ततः बिखर जाता है ।[9]

इस प्रकार व्यक्ति स्वतंत्र तो हुआ है , परन्तु साथ ही उसके सामने असुरक्षा का प्रश्न है । स्वतंत्रता का सुख यदि अकेले भोगना है , तो उसके दुःखों को भी अकेले ही निबटना होगा । यद्यपि अब नौकरियों में बीमा , पी.एफ. वगैरह होता है , परंतु सब

लोग सरकारी नौकरियों में नहीं होते और सबको ये सुविधाएं नहीं होतीं , अतः ऐसे परिवारों में सदैव असुरक्षा का भाव बना रहता है । दूसरे समस्याएं केवल आर्थिक ही नहीं होतीं । दूसरे प्रकार की भी हो सकती हैं , और ऐसी स्थिति में व्यक्ति स्वयं को असुरक्षित महसूस करता है ।

" वे दिन " का अनाम नायक विदेश चला गया है । वह चेकोस्लोवेकिया के प्राग शहर में रहता है । वह एक प्रकार की त्रिशंकु अवस्था में है । अपने वतन भारत से वह कट गया है । और वहां विदेश में भी उसे बाहर का व्यक्ति समझा रहा है । वह छोटी-मोटी नौकरियां करके अपनी आजीविका कमा लेता है । छुट्टियों में इन्टरप्रिटर का काम करता है । परंतु उसके जीवन में किसी भी प्रकार की निश्चितता या निश्चिंतता नहीं है । अतः वह सतत एक प्रकार के मानसिक तनाव में रहता है और उससे छुटकारा पाने के लिए तरह-तरह की शराबों का आश्रय लेता है ।[10]

"महानगर की मीता " (रजनी पनिकर) का नायक , "अँधेरे बन्द कमरे " का मधुसूदन , " अठारह सूरज के पौधे " (रमेश बक्षी) का अनाम नायक आदि भी किसी-न-किसी प्रकार की असुरक्षा का भाव महसूसते हैं और फलतः सहज नहीं रह पाते । उन्होंने जीवन में प्रेम का अनुभव नहीं किया है , उन्हें प्रेम नहीं मिला है , अतः वे दूसरों को भी प्रेम नहीं दे पाते ।

कमलेश्वर कृत "तीसरा आदमी " के नरेश का डर दूसरे प्रकार का है । वह सदैव संशयित और भयाक्रान्त रहता है । इलाहाबाद से दिल्ली उसका ट्रान्सफर हुआ है । दिल्ली में अलग मकान लेकर रहने की उसकी आर्थिक स्थिति नहीं है , मजबूरन उसे अपने एक दूर के भाई के साथ एक कमरे में रहना पड़ता है । दोनों के नौकरी के टाईम अलग-अलग है , दूसरे उसे कई बार दौरों पर जाना पड़ता है , और तब कई-कई दिन

नरेश की पत्नी चित्रा और उसका भाई सुमन्त अकेले रहते हैं । उन दिनों में नरेश के मन का टेन्शन काफी बढ़ जाता है । रात-दिन वह उन दोनों के बारे में ही सोचता रहता है । यहां तक कि चित्रा के नक्श भी धीरे-धीरे नरेश को सुमन्त से प्रतीत होने लगते हैं ।" प्रगाढ़ शारीरिक संबंधों से स्त्री-पुरुष के स्वाकारों में साम्य उभरने लगता है । परंतु वह एक सुदीर्घ प्रक्रिया होती है और बरसों के बाद ऐसा होता है । नरेश ने कहीं ऐसा पढ़ा होगा , अतः वह चित्रा और सुमन्त को देखता रहता है और अपने उस वहम के कारण उसे उन दोनों के चेहरों में काफी समानता दृष्टिगोचर होती है । इस बात से इतना तो ज्ञापित होता है कि नरेश का मस्तिष्क कितना एब्नोर्मल और विकृत हो चुका है ।

"अँधेरे बन्द कमरे " के हरबंस का भय एक दूसरे प्रकार का है । उसे आधुनिक और फारवर्ड दीखने का एक प्रकार का ओब्सेशन है । फलतः अपनी पत्नी नीलिमा को काफी-हाउसों , रेस्टोरां, होटलों , थियेटर वगैरह स्थानों पर ले जाता है और अपने दोस्तों से मिलवाता है । वह नीलिमा को पेंटिंग , नृत्य आदि के लिए प्रेरित करता है ; परंतु नीलिमा जैसे ही किसी क्षेत्र में अपना स्थान बनाने लगती है , हरबंस उसे हतोत्साह करने लगता है । नीलिमा का नृत्य-प्रदर्शन इसीलिए सफल नहीं हो पाता । इन सबके पीछे मनोवैज्ञानिक कारण है । हरबंस के मन में हमेशा एक भय रहता है कि नीलिमा कहीं उससे आगे न निकल जाय । इस मानसिक भय के कारण वह सदैव स्वयं को असुरक्षित अनुभव करता है । इन कारणों से उनका दाम्पत्य-जीवन भी सहज नहीं रह पाता । वे कई बार अलग होते हैं और मिलते हैं । अभिप्राय यह कि किसी प्रकार का स्थायित्व नहीं है । ऐसा अस्थिर दाम्पत्य स्वयं को सुरक्षित कैसे मान सकता है । नीलिमा और

हरबंस के जीवन पर हमेशा तलाक का साया मंडराता रहता है, ऐसी स्थिति में कोई कैसे सहज रह सकता है।

"डाक बंगला" की इरा, "छायामत छूना मन" की वसुधा, "छिनाल" की आशा, "दो लड़कियाँ" की रंजना, "पतझड़ की आवाज़ें" की अनुभा और सुनीता आदि अपने घर-परिवार की स्थितियों तथा नौकरी की अस्थिरता के कारण सदैव असुरक्षा का अनुभव करते हैं। जो महिलाएँ अपने देह के माध्यम से आगे बढ़ गयी हैं, उनको भी एक भय तो सताता है कि क्या हमेशा उनके रूप और यौवन का जादू चलेगा? उसके ढलने पर क्या होगा? "डाक बंगला" की शीला ने इरा के स्थान को हथिया तो लिया है, पर क्या वह सुनिश्चित है? मि. बतरा की भ्रमर-वृत्ति से वह परिचित है। जिस दिन कोई और रूप-यौवना आ गई उस दिन क्या वह भी इरा नहीं हो जायेगी? अतः इस प्रकार की महिलाएँ भी सदैव स्वयं को असुरक्षित महसूस करती हैं और फलतः उनका मानसिक संतुलन ठीक नहीं रह पाता।

"अकेला पलाश" के जमशेद और तहमीना में आयेदिन झगड़े होते रहते हैं। तहमीना ऊँचे पद पर है, अतः नौकरी की ओर से निश्चिंत है अपने दाम्पत्य-जीवन के संदर्भ में निश्चिंत नहीं है। कभी भी कुछ भी हो सकता है। अतः ऐसे लोग भी हमेशा एक प्रकार के मानसिक तनाव में जीते हैं।

महानगरीय परिवेश के अपरिचय के वातावरण में जो लोग दोहरी ज़िन्दगी जीते हैं, वे भी कभी निश्चिंत नहीं रह सकते। रीतिकाल के कवि घनानंद ने बिलकुल ठीक कहा है —

" अति सूधौ स्नेह को मारग है, तहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं
तहँ साँच चलैं तजि आपुनपौ, झिझकै कपटी जे निसाँक नहीं।" [12]

जीवन में जो छल-कपट करते रहते हैं, वे अपने पारिवारिक जीवन में

कभी निश्चिंत नहीं हो सकते । अपना भांडा फूट जाने का एक अज्ञात भय उन्हें निरंतर भयभीत और आशंकित रखता है । मृदुला गर्ग के उपन्यास " उसके हिस्से की धूप " की मनीषा तथा " चित्तकोबरा" की मनु दोहरा जीवन जीने वाली नायिकाएं । पर ऐसी महिलाएं अपने दाम्पत्य में अनिश्चितता के झूले पर झूल रही होती हैं । उनका दाम्पत्य-भवन रेत के कगार पर होता है , कभी भी ढह सकता है ।

"रेखा" उपन्यास की रेखा भी ऐसा ~~xxxx~~ दोहरा जीवन जीनेवाली महिला है । वह प्रौढ़ अवस्था के प्रोफेसर प्रभाशंकर से विवाह तो कर लेती है , परंतु उसकी उद्दाम काम-वासना संतुष्ट नहीं हो पाती । वह रात-रात भर तड़पती रहती है । अतः विदेश से लौटे उसके भाई का मित्र सोमेश्वर दयाल जब उसे अपने बाहुपाश में लेता है , तब ऊपर-ऊपर से तो वह मना करती है , परंतु भीतर से उसका मन चाहता है कि सोमेश्वर उसके साथ संभोग करे और ऐसा ही होता है । शुरू-शुरू में उसका "ईगो" उसे बरजता है , परंतु जीत "इद" की होती है । श्रेय और प्रेय में प्रेय जीतता है । उसके बाद तो रेखा शिकार खेलना सीख जाती है और उसके जीवन में दूसरे पांच पुरुष आते हैं । प्रारंभ में प्रोफेसर को इस बात का पता नहीं चलता , परंतु रेखा के एक प्रेमी निरंजन कपूर का सिगरेटकेस प्रोफेसर के तकिये के नीचे रह जाता है और रेखा की चोरी पकड़ी जाती है । प्रौढ़ प्रोफेसर रेखा को मारते-पिटते भी हैं , पर उसके बहुत अनुनय-विनय और क्षमायाचना करने पर पिघल जाते हैं और उसे क्षमा कर देते हैं । परंतु उस दिन से संशय की एक काली छाया उनके दिलो-दिमाग पर मंडराती रहती है और उनका चैनोसुकून सदा-सदा के लिए समाप्त हो जाता है । इसके कारण ही वे लकवाग्रस्त हो जाते हैं । जब रेखा पकड़ी जाती है , तब शुरू-शुरू में वह सब छोड़ देती है , पर कुछ ही दिनों में वह फिर उस पुराने रास्ते पर चल पड़ती है । उसके बाद भी दूसरे तीन

दुःख उसके जीवन में आते हैं । हाँ , अब वह अधिक सावधान हो गई है । परन्तु इसका बुरा असर दोनों पर पड़ता है । रेखा भी सुखी नहीं रह पाती । प्रोफेसर की मृत्यु हो जाती है । डा. योगेन्द्र ओस्लो युनिवर्सिटी चले जाते हैं । रेखा न इधर की रहती है , न उधर की । ऐसी स्थिति में उसका मानसिक संतुलन कैसे ठीक रह सकता है ।

मीना दास कृत "ढहती दीवारें " की माधुरी उर्फ सुप्रिया भी असुरक्षा की भावना की शिकार है । आजकल महा-नगरों में मौत के सौदागरों का एक नया व्यवसाय शुरू हो गया है । रातोंरात अरब-खरब पति होने के लिए हमारे यहाँ के नर-पिशाचों ने हेरोइन , स्मैक , हशिश , मैण्डेक्स , मारेजुएना , चरस आदि की तस्करी का व्यापार शुरू कर दिया है । प्रस्तुत उपन्यास में इस नये आयाम को लिया गया है । इस समूचे रैकेट के केन्द्र में वीरेन्द्रकपूर उर्फ वी.के. और उसका पुत्र अजय है । अपने इस व्यवसाय के लिए एक मोहरे के रूप में वे माधुरी का इस्तेमाल करते हैं । वैसे माधुरी अजय की पत्नी है । परंतु ये बाप-बेटे पैसे के लिए कुछ भी कर सकते हैं । माधुरी को सुप्रिया बनाकर आकाश नामक एक युवक से वे उसकी शादी करा देते हैं । वी.के. (ससुर) लड़की के पिता का रोल अदा करता है और अजय (पति) उसका भाई बन जाता है । माधुरी उर्फ ( ) सुप्रिया को यह सब चुपचाप सहन करना पड़ता है , क्योंकि उसके भाई को एक मर्डर-केस में इन लोगों ने फंसाया है और इसके एवज में माधुरी से ये सब काम करवा रहे हैं । फलतः माधुरी हमेशा एक टेन्शन में रहती है । आकाश जैसे सरल-हृदय व्यक्ति व्यक्ति के साथ वह छल कर रही है , इस बात का अहसास उसके मन को अपराध-बोध से आक्रान्त करता रहता है । उपन्यास के अन्त में हम पाते हैं कि सुप्रिया सचमुच में आकाश को चाहने लगती है और अन्ततः उसी सबब विषयुक्त खाना खाकर स्वयं को समाप्त

कर लेती है । वस्तुतः यह विषयुक्त खाना उसे आकाश को खिलाना था । इस उपन्यास में लेखिका ने महानगरीय जीवन की मूल्यहीनता को उकेरा है । अपने प्रारंभिक वक्तव्य में लेखिका कहती है — "आज का मानवरूपी राक्षस पैसे के लिए अपनी पुत्रवधू का सौदा करने में भी नहीं हिचकिचाता । समाज के बड़े-बड़े ठेकेदार दिन के उजाले में ही किस हद तक सीधे-सादे लोगों की ज़िन्दगी के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं, किसी भी प्रकार का घृणित कार्य करते समय उनकी आत्मा मर चुकी होती है, उनकी संज्ञा लुप्त हो जाती है, इसी समस्या को लेकर मैंने "ढहती दीवारें" की रचना की है ।" [13]

प्रस्तुत उपन्यास में भी महानगरीय जीवन के दबावों को भलीभाँति निरूपित किया गया है । इसकी नायिका माधुरी सदैव असुरक्षा के भाव से पीड़ित रहती है, क्योंकि एक पल के लिए भी वह इस तथ्य को विस्मृत नहीं कर पाती है कि वह कैसे भयंकर लोगों के बीच में फंस चुकी है । उसका भाई उनके चंगुल में है । वे लोग कितने अमानवीय हैं, नरपिशाच हैं, उसको व्यंजित करने वाला एक प्रसंग उपन्यास में आलेखित है । दिल्ली के ग्रेटर कैलाश से एक बच्चा उड़ाया जाता है । उस रात मुंबई की फ्लाइट में एक आदमी छोटे-से बच्चे को कंधे पर रखकर जा रहा था । बच्चा चादर से ढंका हुआ था । न जाने कैसे पुलिस को शक हुआ । पुलिस ने चादर हटाकर देखा तो बच्चा मरा हुआ था । बच्चे के पेट को फाड़कर उसकी आंतों में कई-एक लाख के हीरे भरे हुए थे । यह वही ग्रेटर कैलाश वाला अपहृत बच्चा था ।[14]

अपराध, माफिया प्रवृत्ति, "भाईलोगों" की दादागिरी आदि अपराध भी महानगरीय जीवन का एक पक्ष है । इधर कुछ फिल्में आयी हैं — "सत्या", "वास्तव", "छल", "शूल" आदि — जो समाज के इस कुत्सित रूप का नंगा चित्रण करती हैं ।

इनको देखकर दिल दहल जाता है । इनके शिकार सभी वर्ग के लोग होते हैं । अतः महानगरों में इनकी दहशत के कारण सभी स्वयं को असुरक्षित महसूस करते हैं और यह असुरक्षा का भाव अनेक प्रकार के मानसिक दबावों को जन्म देता है ।

संवेदना का भोंथरापन :

महानगरीय जीवन की यांत्रिक ज़िन्दगी , भौतिकता की अन्धी दौड़ , अति-व्यस्तता प्रभृति कारणों से मनुष्य का हृदय-पक्ष कमजोर और बुद्धि-पक्ष अधिक प्रबल हो रहा है । बुद्धिपक्ष की प्रबलता के कारण मनुष्य अपनी संवेदना खो रहा है । मेरे निर्देशक प्रोफेसर पारुकान्त देसाई के एक गीत की पंक्तियाँ इस तथ्य को रेखांकित करती है :

" हर एक युग में कोई होती है बात ऐसी
बुद्धि का बोझ बढ़ा लगी हैं ढोने ..." 15

इसीलिए कुछ लोग कहते हैं कि महानगरीय व्यक्ति अब "यंत्र-मानव " होता जा रहा है । संवेदना के इस भोंथरापन को महानगरीय परिवेश के कई उपन्यासों में लक्षित किया जा सकता है ।

" वे दिन " का अनाम नायक इतना संवेदनाहीन हो गया है कि वतन से बहन की चिट्ठी आयी है , पर कई-कई दिनों तक वह अपठित बन्द रहती है । अन्यथा विदेशों में रहने वाले लोग तो अपने वतन की चिट्ठी के लिए कितने बेताब रहते हैं , उसको सुप्रसिद्ध गायक पंकज उधास ने अपने एक गीत "चिट्ठी आयी है , आयी है , चिट्ठी आयी है " में बड़ी खूबसूरती के साथ गाया है । परंतु प्रस्तुत उपन्यास का नायक प्राग की यांत्रिक-मोनोटोनस ज़िन्दगी से इतना ऊब चुका है कि मानवीय रिश्ते-नातों की अहमियत भी उसके लिए समाप्त हो गई है । अपनी

ज़मीन , अपनी संस्कृति , अपने जीवन-मूल्य और अपने परिवेश से वह पूर्णतया कट चुका है । इसी उपन्यास में नायक का कर्मी मित्र टी.टी. अपनी माँ के विवाह के उपलक्ष्य में दोस्तों को पार्टी देता है , क्योंकि वह अकेले पीना नहीं चाहता ।[16] वस्तुतः यह पार्टी आनंद-उमंग की पार्टी नहीं है , टी.टी. के फ्रस्ट्रेशन की पार्टी है । बेटे के विवाह की उम्र में माँ शादी कर रही है । ऐसे बेटे की संवेदनाओं पर कुठाराघात नहीं होगा क्या ?

"अँधेरे बन्द कमरे " का हरबंस नीलिमा को विवाह-पूर्व कोर्टशिप के दिनों में सुख चाहता था , किन्तु महानगरीय जीवन की सुख्यवस्थितता के रहते , उनके जीवन में निरंतर दूरियाँ बढ़ती जाती हैं । कामू के अनुसार हम लोग सहअस्तित्व के लिए अभिशप्त हैं । "आंतरिक बाधा और सुख के अभाव में सचमुच ही सहअस्तित्व — जिसे शायद हम प्रेम कहते हैं — एक अभिशाप है ।"[17]

वस्तुतः देखा जाए तो नीलिमा और हरबंस के बीच का वह संवेदनापूर्ण — प्रेमपूर्ण संबंध समाप्त हो चुका है । उन दोनों के बीच जो है , वह एक प्रकार से "आपका बण्टी" के अजय और शकुन के समान है । अंतर केवल इतना है कि अजय और शकुन अलग हो जाते हैं , यहाँ नीलिमा-हरबंस साथ रहने के लिए अभिशप्त हैं । संवेदनाओं के थोथेपन का प्रमाण यह है कि हरबंस को अब नीलिमा का जन्म-दिन भी याद नहीं रहता । दूसरी ओर "ब्यूटी रेडिएट्स करने वाली "[18] शुक्ला (नीलिमा की बहन) का जन्म-दिन हरबंस को बाकायदा याद रहता है और उसे जन्म-दिन के उपलक्ष्य में शुभ-कामनाओं वाला पत्र प्रेषित करना वह नहीं भूलता । वस्तुतः संवेदनाओं पर काई का जम जाना ही शीत-संबंधों को जन्म देता है और पति-पत्नी में यदि इस प्रकार के शीत-संबंध स्थायीत्व धारण कर लेते हैं तो उनके बीच की

भावनाएं लुप्त हो जाती हैं और फलतः मानसिक दबाव बढ़ता जाता है ।

संवेदनाओं का भोथरापन कई बार व्यक्ति में प्रतिक्रिया के रूप में भी आता है । रमेश बक्षी कृत "अठारह सूरज के पौधे " के अनाम नायक में कई स्वप्न कुलबुलाते थे । परंतु उसके पिता की दोनों टांगें रेल्वे में कट जाती है । उसके पिता रेल्वे में नौकरी करते थे और पिता की कटी हुई टांगों ने मानो उसके हाथ भी काट डाले । न चाहते हुए भी उसे रेल्वे में नौकरी करनी पड़ती है । उसकी स्वप्न-तरंगम के सुर रेल्वे की "छक छक " में खो जाते हैं । उसके जीवन में भूत-भविष्य-वर्तमान "गिव, गेव , गिवन " न रहकर "पुट , पुट , पुट " की भांति एकरस और उबाऊ हो जाते हैं ।[19]

इस प्रकार उपन्यास का नायक जो बनना चाहता था , बन नहीं पाता । अनचाही नौकरी करनी पड़ती है । जीवन की यह भी त्रासदी है कि मनुष्य जो बनना चाहता है , बन नहीं पाता , जो बनना चाहता है , बन नहीं पाता । इसके नायक की स्थिति बदी उज्जमां के उपन्यास " एक चूहे की मौत " के नायक जैसी है । जिसे अंग्रेजी में "जॉब सैटिस्फैक्शन " कहते हैं , वह नहीं मिलता । तब जिन्दगी अपने आप में एक ऊब बनकर रह जाती है । डाक्टर साहब ने अपनी एक कविता में इसे यों शब्दबद्ध किया है —

" जो जीते हैं , जीने की मजबूरी है
जो पीते हैं , पीने की मजबूरी है
मनचिता हम जी नहीं पाते
मनचिता हम पी नहीं पाते " [20]

नायक को मनचाही नौकरी नहीं मिली , मनचाही पत्नी मिल जाती, तब भी जिन्दगी में कोई तरतीब आती । मुंबई में एक लड़की से वह परिचित होता है । परिचय प्रणय में बदल जाता है । वह उसके

साथ परिणय-सूत्र में बंधना चाहता है । पर उस लड़की पर उसके समूचे परिवार का बोझ था । उसने बताया कि उसके भाई पढ़-लिखकर कुछ कमाने योग्य नहीं हो जाते, तब तक वह अविवाहित ही रहेगी । नायक उसके लिए भी तैयार हो जाता है, पर उसके अण्णा बीमारी का तार देकर बुलाते हैं और उसकी शादी गांव के एक जमींदार की अधपढ़ी लड़की से करवा देते हैं । अण्णा के आगे उसकी एक नहीं चलती । दोनों की रुचियों में भी आसमान-जमीन का अंतर है । गांव, खेती, भैंस और गोबर के आगे उसकी सोच बढ़ती ही नहीं है । उसके ससुर तो मुंबई में उसके रहने का बंदोबस्त भी कर देते हैं और गांव से कुछ भैंसें भी ले आते हैं ताकि उसके दूध के कारोबार से रुपये-पैसे कमाएं जाएं । उन्होंने अपने दामाद के भविष्य के लिए पूरा नक्शा बनाकर रखा है । नायक का यह कथन अत्यन्त मार्मिक है -- "अण्णा ने मुझे बैल बना दिया, ये मुझे भैंस बनाने पर तुले हुए हैं ।" 2।

इसका अर्थ यह कतई नहीं कि भैंसों को पालना या दूध का व्यवसाय करना कोई बुरा काम है, बल्कि कोई भी पुरुषार्थ महत्व-हीन नहीं होता । बात सिर्फ यह है कि उपन्यास के नायक की रुचियां कुछ भिन्न प्रकार की है । उसके स्थान पर कोई "मनी-माइण्डेड" व्यक्ति होता तो अपने श्वसुर की संपन्न स्थिति का फायदा उठाता । परंतु यहां नायक-नायिका में रुचि, शिक्षा, संस्कार किसी भी लिहाज से मेल नहीं है । फिर भी नायक शायद मन मारके उसके साथ जी लेता । परंतु पत्नी के भद्दे, फूहड़ अश्लील मज़ाक, व्यंग्य और भाऊ नामक एक ग्राम्य व्यक्ति से शारीरिक रूप से उसका जुड़ते जाना उसे विक्षिप्त-सा कर देते हैं । अतः एक दिन चलती गाड़ी से वह भाऊ को धक्का दे देता है । इसमें भाऊ बच तो जाता है, पर हमेशा के लिए पागल हो

जाता है । एक कलाप्रिय , साहित्य-प्रिय , संवेदनाओं में जीने वाला व्यक्ति इतना संवेदनाहीन कैसे हो गया ?

निरंतर भागती-दौड़ती ज़िन्दगी :

महानगरीय जीवन का यह भी एक आयाम है । महानगरों में एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचने में कई बार घण्टों लग जाते हैं । आवास की समस्या होती है । कई बार जहां रहते हैं वहां से नौकरी या व्यवसाय का स्थान बहुत दूरी पर होता है । इसलिए महानगरीय व्यक्ति का जीवन समय की सूई के साथ बंध जाता है । बस या ट्रेन चुक गये तो फिर एक नयी मुसीबत । अतः महानगरों में आदमी चलता कम दौड़ता अधिक है । फुरसद या राहत जैसे शब्दों से शायद उसका वास्ता ही नहीं है ।

"अठारह सूरज के पौधे " का नायक अपना अधिकांश समय रेल में ही बीताता है । खाना , पीना , सोना , नहाना , निबटना आदि सब कार्य वह रेल में ही करता है । यथा —

" सवेरे पांच बजे से फिफ्टी-एट डाउन में नित्यकर्म और नहाना , कल्याण से वी.टी. तक । सवेरे सात बजे ट्वेन्टी 5 सेवन अप में चाय और नाश्ता , वी.टी. से कल्याण तक । बारह बजे सिक्स डाउन में खाना , कल्याण से वी.टी . तक । फिर शाम तक इधर-उधर दौड़ी की अनलोडिंग एण्ट्री कर्नाक ब्रीज पर । शाम आठ बजे वन अप में रात का खाना , वी.टी. से कल्याण तक । रात बजे से सुबह तक सोना फिफ्टी-सेवन अप में , कल्याण से भुसावल तक । फिर पैसेन्जर से लौटना । " 22

नायक मुंबई में एक जगह खाट पर रहता है । पर खाट तो केवल पोस्ट — चिट्ठी-पत्रियों — के लिए है । वहां नायक

तो अविवाहित हैं, परंतु जो लोग बेचारे अपने बीवी-बच्चों के संग रहते हैं, उनकी भी बहुत मुसीबत है। अधिकांश समय तो उनका अप-डाउन में ही बीत जाता है। नौकरी और यातायात से थककर चूर हो जाते हैं। इस प्रकार महानगर में आवास-स्थान से कार्यालय तक पहुंचना सरल कार्य नहीं। अत्यधिक दूरियां, जन-संकुल सड़कें, खचाखच भरी बसें-गाड़ियां - सवारियां, उनमें किसी प्रकार चढ़ना या प्रवेश पाना, कई-कई घण्टे तक खड़े रहना, सवारियों के इन्तजार में और सवारियों में, उस पर ट्राफिक-जाम की समस्या ये सब महानगरीय जीवन के वे आयाम हैं, जिनसे प्रत्येक को दो-चार होना पड़ता है।

कई बार आवास की समस्या परिवहन की समस्या को जन्म देती है। "अठारह सूरज के पौधे" की नायिका को प्रतिदिन बंबई की इलेक्ट्रिक ट्रेनों में आना-जाना पड़ता है, क्योंकि उसके आवास और ऑफिस-स्थान में काफी फासला है। "नावें" की मालती दिल्ली में रहती है, पर उसकी नौकरी गाजियाबाद में है। वह गाजियाबाद रह नहीं सकती, क्योंकि उसका परिवार दिल्ली में रहता है। दो स्थानों का खर्चा वह उठा नहीं सकती। फलतः उसे प्रतिदिन दिल्ली से गाजियाबाद आना-जाना पड़ता है।[23] इसी तरह "बेघर" की संजीवनी और "अपने पराए" की मंदिता का अधिकांश समय आने-जाने में ही नष्ट हो जाता है। ऐसे में पुरुष कर्मचारी तो कई बार ताश इत्यादि खेलकर भी अपना मनोरंजन कर लेते हैं, परन्तु महिला कर्मचारियों को यात्रा की बोरियत से गुजरना पड़ता है। इस पर संजीवनी को एक और मानसिक त्रास से गुजरना पड़ता है। लेट पहुंचने पर उसका पति परमजीत उस पर शंका करता है। ताने-तिश्ने और व्यंग्य-बाण चलाता है। परमजीत को ऐसा लगता है कि संजीवनी रास्ते में उसके किसी यार-दोस्त से मिलती है।

"अपने पराए" की संहिता को अपने गंतव्य स्थान पर जाने के लिए तीन चार बसें बदलनी पड़ती हैं। महानगरों में बसों को पकड़ना भी एक बड़ा दुष्कर और परिश्रम-साध्य काम होता है। कुछ बस-ड्राईवर इतने चालाक और कड़ियां होते हैं कि बस-स्टोप स्टोप पर बस न रोककर कुछ दूरी पर रोकते हैं, तब दौड़कर बसको पकड़ना पड़ता है। उसमें कई बार हड्डी-पसली भी टूट सकती है। इस प्रकार संहिता को बस पकड़ने के लिए भी एक तरह से जूझना पड़ता था।[24]

इन बसों में महिलाओं के साथ अभद्र छेड़छाड़ होती रहती है। यह एक आम है। यदि ऐसी बातों को लेकर झगड़ने बैठें तो उन्हें दिन में कई बार झगड़ना पड़े। "नगरवधुएं हंसता है" की माधवी, "पतझड़ की आवाजें" की अनुभा तथा "रेत की मछली" की कुंतल जानती हैं कि पुरुष सहयात्री के बार-बार उन पर गिर पड़ने के कारणों में बस के हिचकोले नहीं उनकी मनोविकृतियां ही होती हैं। पर उनकी ऐसी ओछी हरकतों को बरदाश्त करने के अलावा दूसरा कोई रास्ता भी तो नहीं होता। "कठरेखा" की रानु को सर्दियों में मुंह-अंधेरे सुबह अपने कार्य-स्थल पर पहुंचना होता है। कण्डक्टर उसके लड़की होने का तथा एकान्त का लाभ उठाते हुए उसकी ~~उंगलx~~ उंगलियों के पोर दबाता है तो कभी डिगमिगाने का अभिनय करते हुए उस पर गिर पड़ता है।[25]

इसका एक दूसरा पहलू भी है। "अनदेखे अनजान पुल" की निन्नी अपने भाई के साथ दिल्ली इसलिए जाती है कि उसने सुन रखा था कि दिल्ली की बसों में लोग बड़ी बदतमीजी करते हैं। अपनी कुरूपता के कारण निन्नी हमेशा पुरुष-स्पर्श के लिए लालायित रहती है। अतः वह मन से चाहती है कि कोई उसके साथ ऐसी छेड़छाड़ करे।

अतिव्यस्तता :

महानगरीय जीवन में प्रायः स्त्री-पुरुष दोनों को काम करना पड़ता है । कहीं पर यह मजबूरी होती है । कहीं पर स्त्री इसलिए नौकरी करती है कि पढ़ी-लिखी है , सुशिक्षित है । परिणामस्वरूप उनके जीवन में बहुत व्यस्तता रहती है । जहाँ स्त्री नौकरी नहीं करती , वहाँ भी वह घर में कोई दूसरा छोटा-मोटा काम करती है , जैसे कपड़े सिलना , स्वेटर बुनना या ऐसा ही कोई दूसरा काम । अतः महानगरीय जीवन में समय का अत्यन्त अभाव रहता है । मनुष्य को मशीन की तरह काम करना पड़ता है ।

इस अतिव्यस्तता का एक कारण , विशेषतः मध्यवर्ग में , बढ़ती हुई महंगाई है । महंगाई इतनी बढ़ गई है , और रात-दिन इतनी बढ़ रही है कि महानगरीय व्यक्ति को आय और खर्च के दो छोरों को मिलाने के लिए कई बार नौकरी के घण्टों के अतिरिक्त "ओवरटाईम" या कोई दूसरी पार्ट टाईम नौकरी करनी पड़ती है ।

इस व्यस्तता का एक कारण यह भी है कि महानगरों में आवास-स्थान और काम के स्थान के बीच बहुत ज्यादा दूरी होती है और यातायात में ही कुछ सारा समय तो निकल जाता है । पढ़ने के नाम पर अखबार के अतिरिक्त शायद ही कुछ पढ़ पाते हैं ।

इस प्रकार अतिव्यस्तता के कारण उसका मानसिक तनाव बढ़ जाता है , वह चिड़चिड़ा हो जाता है । मनुष्य को आराम भी चाहिए । मनोरंजन भी चाहिए । बदलाव भी चाहिए । परंतु महानगरों का जीवन ऐसा होता जा रहा है कि जिन्हें ये सब चाहिए उन्हें यह कभी नहीं मिलता । दूसरी ओर यह भी एक बहुत बड़ी विडंबना है कि कुछ लोगों को आराम ही आराम है , मनोरंजन ही मनोरंजन है । वे उसकी अतिरेकता के कारण परेशान

हैं । "चित्ता नर्मदाबेन गंगूबाई " की नर्मदा सिकानी , तथा "रेखा" की रेखा के सामने समय काटने की समस्या है । समय कैसे काटा जाए , क्योंकि उनके सामने कोई रचनात्मक अभिगम नहीं है । यौन-अतृप्ति ने उनको देह-मात्र बना दिया है ।

महानगरीय जीवन की यह अतिव्यस्तता "पतझड़ की आवाजें" "अठारह सूरज के पौधे " , " वे दिन " , " अपने पराए " , "अंतराल " , " कबीरा " , "महानगर की मीता " , "टेराकोटा" , "अँधेरे बन्द कमरे " जैसे उपन्यासों में रेखांकित की जा सकती है ।

तनावग्रस्त माता-पिता और पीड़ित संतान :

यद्यपि यह आयाम सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है , ग्राम्य-कस्बाई या नगरीय परिवेश में भी वे स्थितियां मिलती हैं ; तथापि उपर्युक्त निरूपित कारणों से महानगरों में इसका परिमाण कुछ बढ़ा-चढ़ा होता है । "नावें " की मालती अपने परिवार का बोझ ढोती है । परिवार-प्रतिबद्धता के कारण वह विवाह नहीं कर सकती । अतः अपने जीवन की नीरसता को एक राह देने के उपक्रम में वह सौम्जी को प्रेम करने लगती है । सौम्जी का उदार और साहित्यिक व्यक्तित्व भी उसे आकर्षित करता है । परन्तु जब उसे सौम्जी का गर्भ रहता है , तब उसका दोनों तरफ से शोषण होता है , सौम्जी की तरफ से भी और अपने घर-परिवार वालों की तरफ से भी । तब वह दिल्ली छोड़कर बदायूं चली जाती है और वहाँ एक स्कूल की आचार्या रेखा निगम की सहायता से उसे नौकरी भी मिल जाती है । वहाँ वह पुत्री नीलिमा (नीलू) को जन्म देती है । बाद में नीलू को पिता का नाम देने हेतु वह विश्वेश से विवाह कर लेती है । पर विश्वेश को वह दिल से नहीं चाह सकती । उनमें सदैव एक तनावपूर्ण स्थिति बनी रहती है , जिसका दुष्प्रभाव बच्ची नीलू पर भी पड़ता है ।

इस संदर्भ में डा. रोहिणी अग्रवाल का विश्लेषण उपयुक्त प्रतीत होता है :

" माँ का अकारण चिढ़े रहना, साथ रहते हुए भी पति से संबंधहीनता बनाए रखना तथा पिता की शारीरिक एवं मानसिक अतृप्ति नीलिमा की तीव्र दृष्टि से छिपी नहीं है। अपराध-बोध से ग्रस्त माँ मालती अपनी दृष्टि से जीवन जीती रही और सौतेले पिता विशेषकर नीलू को अपना नहीं मान पाए। फलतः माता-पिता के होते हुए भी नीलू स्वयं को अनाथ अनुभव करती है। उसके मन में माता-पिता का सम्मिलित प्यार पाने की कुलन है। इसी कारण वह इधर-उधर भटकती रहती है, उद्दण्ड होती चलती है। अजय के साथ घूमने तथा अपनी इच्छा से चुपचाप विवाह रचाने के मूल में नीलिमा की इस उद्दण्डता को लक्षित किया जा सकता है।" 26

"आपका बण्टी" के बण्टी तथा " कड़ियाँ " के पप्पू में भी यह आकुलता दृष्टिगत होती है। वे चाहते हैं कि और बच्चों के माँ-बाप की तरह उनके माँ-बाप भी एक साथ एक छत के नीचे रहें। माँ-बाप की यह तनावग्रस्त स्थिति बच्चों के सुखी, प्रसन्न जीवन को ग्रस लेती है और वे असाधारण (एब्नोर्मल) व्यवहार करने लगते हैं। उससे बच्चों के स्वस्थ विकास पर तो असर पड़ता ही है, किन्तु समाज का संतुलन भी गड़बड़ा जाता है। ऐसे "प्रोब्लैमैटिक बच्चे " आगे चलकर समाज में और प्रोब्लेम पैदा कर सकते हैं। जिन बच्चों ने अपने शैशव में प्रेम नहीं पाया, वे बड़े होकर किसीको प्रेम नहीं दे सकते। " महानगर की मीता " का नायक इसीलिए इतना स्वार्थी और स्वकेन्द्रित है कि उसको भी बचपन में माता-पिता का प्रेम नहीं मिला था। " प्रेत और छाया " का पारसनाथ समूची स्त्री जाति से नफ़रत करता है, क्योंकि उसके पिताने उसके ~~कच्च~~ कोमल मस्तिष्क में यह बात

दिखा दी थी कि उसकी माँ एक बदचलन औरत थी और वह उसका बेटा नहीं है । वस्तुतः यह बात गलत थी । पारसनाथ के पिता और माता में पटती नहीं थी, अतः अपनी पत्नी से बदला लेने के लिए पारसनाथ के पिता ऐसी झूठी और गलत बात उसके दिमाग में डाल देते हैं । पर उसके कारण पारसनाथ की जिन्दगी तो बरबाद होती ही है, वह अनेक मासूम औरतों की जिन्दगी से खेलता है । लघुता-ग्रंथि के कारण उसका स्वभाव ही पर-पीड़क (सैडिस्ट) हो जाता है ।

"मछली मरी हुई" के नायक निर्मल पद्मावत में जो असाधारणता (एब्नोर्मैलिटी) पाई जाती है, उसका कारण भी उसकी माँ की स्वार्थपरता है । निर्मल की माँ इतनी कामांध और स्वार्थान्ध निकलती है कि अपने छोटे बच्चे का तनिक भी विचार किए बिना अपना घर और संपत्ति बेचकर एक पराये मर्द के साथ भाग जाती है । निर्मल में उसकी प्रतिक्रिया मिलती है ।

जिन स्त्रियों के विवाहेतर सम्बन्ध होते हैं, उनके बच्चों पर भी उसका बुरा असर पड़ता है । पृथ्वीनारायण सिंह कृत "निस्संगता" की अलका इसका उदाहरण है । अलका अपनी माँ के अमित के साथ जो अवैध संबंध हैं उनसे परिचित है । अलका ने अपने पिता की बेचारगी को अनुभव किया है । अतः माँ के प्रति उसका आक्रोश स्वाभाविक है । माँ के उन्मुक्त आचरण के कारण वह खुद भी "उद्दण्ड" हो गई है । अतः वह भी "नावें" की मीनू की भाँति किसीसे पूछे बिना अपने मित्र गौरव से विवाह कर लेती है । बड़ों की मान-मर्यादा का भी वह कोई लिहाज नहीं रखती । गौरव को लेकर उसके पिता जब उससे कुछ कहने जाते हैं, तब वह अपने पिता से भी उलझ पड़ती है —" पापा, बेटी पर प्रतिबंध लगाना सहज है, उसका गला घोंटना आसान है । पर मम्मी से आप कुछ नहीं कह सकते । उससे आपके परिवार की प्रतिष्ठा नष्ट नहीं होती । पर मुझे कितना सुनना पड़ता है इस लेकर ।" 27

स्पष्ट है कि अलका की उच्छृंखलता और बदचलनी के पीछे एक गहरी व्यथा विद्यमान है । ठीक ऐसी ही स्थिति " यह भी नहीं " के टोनी की भी है । टोनी आठ-नौ साल का है । उसकी स्थिति तो अलका से भी बदतर है, क्योंकि उसकी माँ शान्ता के कई पुरुषों से संबंध हैं । किसी शारीरिक या मानसिक तृप्ति हेतु शांता गैर-मर्दों से संबंध नहीं गांठती । उसमें भी उसकी कोई-न-कोई योजना होती है । विकास, सेठ प्रीतमलाल, कौशल आदि पुरुषों से उसके संबंध हैं । माँ शान्ता की भ्रमर-प्रवृत्ति के कारण टोनी के पिता लोहन भी शान्ता को छोड़ देते हैं । अतः टोनी को पिता के प्रेम से भी वंचित रहना पड़ता है और माँ से उसकी अंतरंगता हो नहीं सकती । माँ के साथ माँ के पुरुष-मित्रों के बीच में वह खुद को बहुत उपेक्षित और असुरक्षित समझता है । हमारे समाज की जो संरचना है उसमें कोई लड़का एक बार अपने पिता की ऐयाशी को तो बरदाश्त कर सकता है, पर माँ की चरित्रहीनता को नहीं । फलतः टोनी भी बदतमीज और उद्दण्ड हो जाता है । " ये दिन " का बीता अभी छोटा है, अतः अपनी माँ राधना की विलासी भोग-प्रवृत्ति से नावाकिफ है । परंतु जिस दिन वह बड़ा हो जायेगा उस दिन वह अपनी माँ से नफरत करने लगेगा ।

भगवानसिंह कृत " उन्माद " में रंजना की माँ के दाम्पत्येतर संबंध नहीं है, पर उसके माता-पिता के संबंध सहज भी नहीं हैं । माता-पिता के शीत-संबंध, प्रेम का अभाव और शैशव काल से ही अनेक प्रकार की वर्जनाओं के कारण जब रंजना यौवन की भूमि पर कदम रखती है तो समूची पितृसत्तात्मक व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह करती है । रंजना अपने पुरुष-मित्र मनोज से कहती है — "तुमसे शादी नहीं करूंगी । बस साथ रहूंगी । बांधूंगी नहीं, बंधकर रहूंगी । शादी पाशविक संबंध हैं । जैसे जानवरों को बांधकर, कसकर, नाथकर रखते हैं, इस डर से कि बन्धन हटते

ही वह छूटकर भाग न जाएं ।"[28]

पिता के कठोर नियंत्रण में पली रंजना की भूमिका केवल आदेशों और उपदेशों के पालन तक थी । अतः उसकी प्रतिक्रिया भी उतनी ही तीव्र व उच्छृंखल है । फलतः उसकी दमित दमित आकांक्षा जब उछाल मारती है तब मनोज के साथ के एकान्त क्षणों में वह अनावश्यक चहकती है । मनोज को उसका ऐसा व्यवहार बेतुका लगता है । मनोज उसे चुप कराने की कोशिश करता है और कहता है कि तुम्हारी यह आवाज़ तुम्हारी माँ या पिता के कानों में पड़ रही होगी । मनोज के ऐसा कहने पर वह अपनी किलक और "आह-ऊंह" को और भी बढ़ा देती है, मानों कहना चाहती हो — "यही तो मैं चाहती हूँ । मैं अपने सुख से उन्हें रौंद देना चाहती हूँ । उनके अवसाद को और बढ़ाकर ।" [29]

शशिप्रभा शास्त्री द्वारा प्रणीत " परछाइयों के पीछे " की माला भी माता-पिता के तनावग्रस्त संबंधों से प्रभावित है । "नावें" की नीलू जहां अपनी माँ मालती को अपराधी मानती है, वहां माला अपनी माँ सुस्मिता को दोषी मानती है । उसमें उसके पिता महीपाल की चालाकी है । वह अपनी मनमानी करने के लिए सुस्मिता को अलग कर देता है और बच्चों को अपने पास रखता है । वह अपनी निर्दोष पत्नी के चरित्र पर कीचड़ उछालता है । जिस प्रकार विष्णु प्रभाकर कृत एकांकी " माँ " में मनीषी के दादा मनीषी के मन में उसकी माँ कमला के विरुद्ध अनाप-शनाप बातें भर देते हैं, ठीक उसी प्रकार प्रस्तुत उपन्यास का महीपाल प्रारंभ से ही अपने बच्चों के कोमल मस्तिष्क में ऐसी बातें डाल देता है कि जिससे बच्चे माँ को घृणा करने लगें । अतः माला जब माँ के संरक्षण में आ जाती है तब भी माँ के प्रति उसका जो दृष्टिकोण है, उसमें कोई बदलाव नहीं ~~आता~~ आता । वकील पंकज तायल को वह सहज रूप में न लेकर माँ के मित्र या यार के रूप में ही

लेती है । फलतः माँ सुमिता का बहाने-बहाने से अपमान करना और उसके चरित्र पर छींटाकशी करना उसका नित्यक्रम-सा हो गया है ।[30]

मूल्यों का विघटन :

औद्योगिक क्रान्ति, महानगरीकरण, भौतिकता का आग्रह, चीजपरस्ती आदि के कारण महानगरीय परिवेश में मूल्यों में विघटन की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है । इस मूल्य-विघटन के कारण स्वच्छंदता, उच्छृंखलता, अनुत्तरदायित्व आदि बढ़ रहे हैं और जीवन को केन्द्रच्युत कर रहे हैं । जीवन की धुरी गड़बड़ा रही है । मूल्य-विघटन मनुष्य को कहीं-न-कहीं तोड़ता है । वह भीतर से खोखला होने लगता है ।

विवाहपूर्व या बिना विवाह के यौन-संबंध अब आम बात हो गई है । " वे दिन " का अनाम नायक जिस होस्टेल में रहता है, वहाँ आठ बजे के पहले तक प्रेमिका को लाने का नियम है । पर सर्दियों में बाहर प्रेम करने की असुविधा के कारण लड़के होस्टेल के गेटकीपर पीटर को कुछ क्राउन देकर उससे चाबियाँ प्राप्त कर लेते हैं । इसलिए वे पीटर को सेंट पीटर और उन चाबियों को "कीज़ आफ पैरेडाइज़ " कहते हैं ।[31] इस प्रकार यदि कोई लड़का रात के समय अपनी प्रेमिका को लाता है, तो उसका रूममेट उसके लिए इतना त्याग करता है, कि वह रात बाहर बिताये । होस्टेल के लड़के जिस दिन "डेट" को मिलना हो उसी दिन नहाते थे, अतः अगर कोई नहाने जा रहा है तो बाकी के लोग समझ जाते थे कि आज उसकी डेट आयेगी और वह उससे प्रेम करने की तैयारी में लगा है ।[32] यहाँ एक बात और ध्यातव्य रहे कि इस पश्चिमी वातावरण में "प्रेम" का मतलब सिर्फ शरीरी प्रेम है । लड़के "डेट" बदलते भी रहते हैं

वहाँ की यौन-उच्छृंखलता का एक उदाहरण उपन्यास में मिलता है । उपन्यास का अनाम नायक जिसके साथ रह रहा है, वह एक स्त्रैणनियन लड़का है । उसकी कई प्रेमिकाएँ हैं और नायक को उसके कारण कई रातें बाहर काटनी पड़ती हैं ।[35]

इस यौन उच्छृंखलता के कारण वहाँ का सामाजिक जीवन छिन्न-भिन्न हो गया है । विवाह-संस्था टूटने के कगार पर है । अतः प्रसन्न दाम्पत्य या प्रसन्न पारिवारिक जीवन स्वप्न होता जा रहा है । इससे अंततोगत्वा मानसिक दबाव बढ़ेंगे । मानसिक बीमारियाँ बढ़ेंगी । बच्चों की समस्या विकट से विकटतम होती जायेगी ।

माता-पिता की स्वार्थान्धता :

महानगरीय परिवेश में कई ऐसे उपन्यास मिलते हैं, जहाँ माता-पिता की स्वार्थान्धता के कारण सुशिक्षित नौकरीशुदा लड़की को भयावह स्थितियों से गुजरना पड़ता है । प्रारंभ में माँ-बाप को लड़की की चिन्ता होती है, उसके विवाह के लिए भी वे चिन्तित दिखते हैं, परन्तु जैसे-जैसे लड़की की कमाई खाते जाते हैं, उनका अपराध-बोध कम होने लगता है और वे लड़की की ओर से बिलकुल निश्चिंत हो जाते हैं और हर महीने उसके सामने नयी-नयी फरमाइशें रखते जाते हैं, नये-नये खर्चे बताये जाते हैं और एक समय तो वह आता है जब वे मन से चाहने लगते हैं कि उनकी लड़की किसीसे विवाह न करे । लड़की यदि सुशील है, समझदार है, परिवार-प्रतिष्ठित है और अपनी तरफ से वह सब कर रही है, यह तो समझ में आ रहा है, परंतु माँ-बाप अपने स्वार्थ में बिलकुल अन्धे हो जाएं, उसे अमानवीय ही कहा जायेगा ।

"पचपन खंभे लाल दीवारें", "टेराकोटा", "नावें", "दो लड़कियां", "पतझड़ की आवाजें" प्रभृति उपन्यासों में हम इस प्रवृत्ति को रेखांकित कर सकते हैं। "नावें" की नायिका मालती के माँ-बाप इस दृष्टि से बड़े ही अमानवीय लगते हैं। मालती की कमाई से उन्हें कोई परहेज नहीं है। वह सोमजी के साथ बाहर जाती है। दूसरे शहरों में होटलों में उनके साथ ठहरती है। वेतन के उपरांत अतिरिक्त कमाई भी उन्हें मिलती है। मालती की कमाई पर पूरा परिवार मजे उड़ाता है। उस समय वे एक बार भी मालती को पूछते नहीं है कि वह कहां जाती है, क्या करती है, किसके साथ रहती है। परंतु उसी मालती को जब सोमजी से गर्भ रहता है और वह उस गर्भ को नहीं गिराना चाहती तब उसकी माँ उसे जली-कटी बातें सुनाती है, उसे कुलटा और कुलांगार कहती है। फलतः वह दिल्ली छोड़कर बदायूं चली जाती है। यहाँ प्रश्न उठता है कि जब मालती बदायूँ चली जाती है, तब उनका परिवार कैसे चलता है? इसका अर्थ यह हुआ कि वे अब तक मालती का आर्थिक शोषण ही कर रहे थे। यदि मालती के माँ-बाप, समाज का थोड़ा विरोध सहकर भी, मालती को उस समय सहारा देते, तो मालती को भी अपनी पहाड़-सी ज़िन्दगी काटने का एक अवलंब मिल जाता। दूसरे आश्चर्य तो तब होता है कि प्रौढ़ावस्था को पहुँचे माँ-बाप स्वयं तो प्यार करते हैं, शारीरिक-सुख का आनंद उठाते हैं और वे ही माँ-बाप भीतर से चाहते हैं कि उनकी पुत्री इस सुख से वंचित रहे। मालती जोशी की कहानी "होटल के पीछे" में इस तथ्य को रेखांकित किया गया है।

माँ-बाप यदि बेटी की कमाई खाते हैं, तो उन्हें बेटी का सुख भी देखना चाहिए। वैसे बेटी की कमाई खाना पुराने मूल्यों के अनुसार अनैतिक है, परंतु यहां तो वे आधुनिक हो जाते हैं। जब बेटी यदि अविवाहित माँ बनती है तो उनकी

आधुनिकता कहाँ काफूर हो जाती है ? बेटी की कमाई खाते हैं तो इतनी हिम्मत भी होनी चाहिए कि ऐसे नाज़ुक मौकों पर उसका साथ दें ।

नाना प्रकार के प्रदूषण :
==================

महानगरीय जीवन में मनुष्य को विविध प्रकार के प्रदूषणों का शिकार होना पड़ता है । जल का प्रदूषण , हवा का प्रदूषण , ध्वनि-प्रदूषण और वैचारिक प्रदूषण । जल-प्रदूषण और वायु-प्रदूषण के कारण मनुष्य का स्वास्थ्य खराब होता है । उसे अनेक प्रकार की बीमारियाँ होती हैं । "नदी फिर बह चली " का जगलाल पटना जाकर सेठ तो बन जाता है , परंतु वहाँ उसका स्वास्थ्य अच्छा भी नहीं रह जाता । "राग दरबारी" उपन्यास का रंगनाथ कानपुर में रहता है , परंतु उसका शरीर पीला पड़ गया है और गाल पिचक गए हैं ।

"कुरसाघर" , " अनारो" , "चक्र" , " बसन्ती" आदि उपन्यासों में ऐसे अनेक युवक मिलते हैं , जो युवावस्था में ही बुढ़िया गये हैं और तरह-तरह की बीमारियों से परेशान हैं । महानगरों में कुछ लोग वेश्याओं के पास जाते हैं और उसके कारण उन्हें सिफिलिस , गनोरिया जैसी गुप्त बीमारियाँ (वी० डी० ,) होती हैं । "चक्र" उपन्यास में एक ऐसा पात्र मिलता है ।

ध्वनि प्रदूषण की चीं-चीं , भौं-भौं के कारण भी मानसिक दबाव बढ़ता है । हम समझते हैं कि ये सब हमें रास आ गया है और अब उससे कुछ नहीं होता है । थोड़े समय में मनुष्य उसका आदी हो जाता है । परंतु ऐसा नहीं है । ये सारी चीजें मनुष्य के मन को बुरी तरह से प्रभावित करती हैं और वह रक्त तथा हृदय की बीमारियों से घिर जाता है । महानगरों

में लोगों को बी.पी. , लकवा , हार्ट-अटैक , हार्ट-फेल्योर जैसी जानलेवा और तकलीफदेह बीमारियाँ होती हैं ।

इन सब प्रदूषणों से भी खतरनाक प्रदूषण है वैचारिक-प्रदूषण , नैतिक प्रदूषण । इन प्रदूषणों के कारण युवक-युवतियाँ गलत रास्तों पर चल पड़ते हैं और एक बार यदि इनमें फँस गये तो दलदल की तरह फँसते चले जाते हैं । " वे दिन " की युवापीढ़ी रिक्सोथिक्स , व्हिस्की, कोन्याक , बियर , स्कॉच , शैम्पेन , ब्लैक गार्डिनी , ओल्ड मोन्क जैसी शराबों में अपनी जिन्दगी खराब कर रही है । "मुझे चाँद चाहिए " का हर्ष तो स्मैक , हिरोइन जैसी खतरनाक ड्रग्स का सेवन करने लगा है । "टूटती दीवारें " में हैं ड्रग्स की तस्करी करने वाले मौत के सौदागरों के यथार्थ को निरूपित किया गया है ।

पश्चिम की भौतिकवादी संस्कृति के प्रभाव में महानगरों में लड़कियाँ मॉडलिंग आदि करने लगी हैं । मॉडलिंग यदि व्यवसाय के तौर पर और सही लोगों के साथ किया जाय , वहाँ तक तो ठीक है । परंतु यह व्यवसाय बहुत फिसलन वाला है । कई बार ऐसी लड़कियाँ गलत लोगों के हाथों में पड़ जाती हैं और अपनी जिन्दगी बरबाद कर बैठती हैं । कुछ वर्ष पूर्व जलगाँव में एक ऐसा कौभाण्ड पकड़ा गया था । नशीले ड्रग्स या प्रलोभनों के प्रभाव में कुछ लोग लड़कियों की नंगी तस्वीरें खींच लेते हैं और फिर उनका ब्लैक-मेलिंग करते हैं । "छायामत छूना मन " की वसुधा की बहन कंचन इन्हीं प्रकार के चक्करों में पड़कर "ब्लै "ब्लू फिल्मों " में काम करने पर मजबूर हो जाती है । बहुत-सी लड़कियाँ फिल्मी हिरोइनें बनने के चक्कर में अपनी जिन्दगी को बरबाद कर लेती हैं और मामूली एक्स्ट्रा बनकर रह जाती हैं , जहाँ रात-दिन उनका यौन-शोषण होता रहता है । "मुझे चाँद चाहिए " , " दिल एक सादा कागज " , " धंसता हुआ आदमी"

"मछली मरी हुई", "यह भी नहीं", "कृष्णकली" प्रभृति उपन्यासों में नैतिक-प्रदूषण के कारण विपथगामी होती हुई कई लड़कियों और महिलाओं के चरित्र मिलते हैं।

निवास की समस्या :

महानगरों में निवास की समस्या एक विकट समस्या है। इस इस समस्या के कारण अधिकांश लोगों को वहां मकान नहीं मिलता जहां वे काम करते हैं, फलतः उन्हें पूर्व-उल्लेखित यातायात की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उनके कई-कई घण्टे आने-जाने में व्यतीत हो जाते हैं। ये सब चीजें उनमें ऊब, घुटन, मानसिक श्रान्त और अतएव मानसिक दबाव पैदा करते हैं। "पत्थर की आवाजें" की अनुभा की सगाई ही इस समस्या के कारण टूट जाती है, क्योंकि आर्थिक विवशताओं के कारण उसके परिवार को एक ऐसे स्थान पर रहना पड़ता है जो बदनाम है। "कमलेश्वर कृत "तीसरा आदमी" की जो समस्या है वह भी आवास के कारण ही है। मकान के लिए मुंबई जैसे महानगरों में बहुत बड़ी रकम "पगड़ी" के रूप में देनी पड़ती है। जगदम्बाप्रसाद दीक्षित कृत "मुरदाघर" में जब्बार नामक व्यक्ति अपनी पत्नी और बच्चे को बहुत चाहता है। परंतु पैसों के अभाव में उसे पत्नीसहित उस झोंपड़पट्टी में रहना पड़ता है, जहां महानगरों की गन्दगी, सस्ती वेश्याएं रहती हैं। जब्बार जल्द से जल्द अपनी पत्नी को इस माहौल से निकालना चाहता है। अतः वह कोई बड़ा हाथ मारने के फिराक में रहता है और वह ऐसा करता भी है, परंतु उससे गलती हो जाती है। वह स्मगलर के यहां चोरी करता है। कहीं और जगह हाथ मारता तो पुलिस को ज्यादा चिन्ता न होती। कितना विडंबनापूर्ण, कितना विचित्र! उपन्यास का एक पात्र नत्थू बिलकुल यथार्थ कहता है —" किधर भी चोरी करना पन इस्मगलर .... दारुवाला ... रण्डीवाला .... इधर कभी

झुकके भी नहीं जाने का । नहीं तो पोलिस जान से मार डालेगा मार-मार के । कभी नहीं छोड़ेगा ... सारा पोलिसवाला इधर से व चलता ।"[34] अब्बार स्मगलिंग वाले के यहाँ चोरी करता है उसमें पकड़ा जाता है, परंतु अपने बीवी-बच्चे को उस गन्दे माहौल से निकालने के लिए बसहक वह पुलिस की मरणासन्न कर देनेवाली मार भी बरदाश्त कर लेता है, पर अपना गुनाह कबूल नहीं करता, क्योंकि उस स्थिति में उसे चुराया हुआ माल वापस करना पड़ता । अभिप्राय यह कि यहाँ एक व्यक्ति रहने की समस्या के कारण अपनी जान को भी जोखिम में डाल देता है ।

"किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई", "चौरोंवली से चौरी-बन्दर तक", "जूलूस जाना", "छोटे छोटे पक्षी" (शैलेश मटियानी); "अनारो" (मंजुल भगत); "वसन्ती" (भीष्म साहनी); "रेत की मछली" (कान्ता भारती); "नावें" (अभिज्ञा शास्त्री), "अँधेरे बन्द कमरे" (मोहन राकेश); "छाया मत छूना मन" (हिमांशु जोशी); "नगरपुत्र हँसता है" (धर्मेन्द्र गुप्ता); "कहिता" (अभिज्ञा शास्त्री); "कुहुपकली" (शिवानी) प्रभृति उपन्यासों में हम इस समस्या और उससे उत्पन्न मानसिक तनावों और दबावों को महसूस कर सकते हैं ।

बच्चों की शिक्षा की समस्या :

बच्चों की शिक्षा की समस्या भी महानगरीय जीवन का एक विकट पक्ष है । कोर्पोरेशन के सरकारी स्कूलों में पढ़ाई अच्छी होती नहीं है । दूसरे वहाँ अधिकांशतः गरीब, निम्नवर्ग, बल्कि निम्नतम वर्ग के बच्चे आते हैं; मध्यवर्ग और उच्च-मध्य-वर्ग के माँ-बाप ऐसी स्कूलों में अपने बच्चों को भेजते नहीं हैं । अतः महानगरों में पब्लिक-स्कूलों का आग्रह बढ़ रहा है । इन स्कूलों में बच्चों के प्रवेश की समस्या एक महान समस्या हो

जाती है । किसी चक्रव्यूह को भेदने से कम यह नहीं है । उसमें बड़ी तगड़ी रकम मां-बाप से ऐंठी जाती है "डोनेशन" जैसे सुंदर शब्द का प्रयोग करते हुए । पहले मां-बाप बेटी का दहेज सहेजने लिए रकम जोड़ते थे , अब इस तथाकथित "डोनेशन" के लिए रकम जोड़नी पड़ती है ।

दूसरे अंग्रेजी स्कूलों का क्रेज दिन-ब-दिन बढ़ रहा है । नेता लोग लोगों को शिक्षा देते हैं कि बच्चों को मातृभाषा में शिक्षा दिलानी चाहिए , लेकिन उनके बच्चे तो विदेशों में या "दून" स्कूलों में , बहुत ऊंची फीस देकर पढ़ते हैं । स्वतंत्रता से पूर्व गरीबी-अमीरी के भेद को मिटाने की बातें होती थीं , पर ये दीवारें तो और भी ऊंची और मोटी होती जा रही हैं । गरीबों के स्कूल अलग , अमीरों के स्कूल अलग । बड़ौदा जैसे नगर में भी अब " सेन्ट्रली ए.सी. " स्कूल चल रहे हैं जिनकी फीस सुनकर सामान्य मनुष्य को चक्कर आ सकते हैं । समाजवाद लाना हो तो सर्वप्रथम शिक्षा के क्षेत्र में लाना चाहिए । पर यहाँ तो पूंजीवाद चल रहा है । बड़ौदा के सयाजीबाग (कमाटी-बाग) में जगह-जगह सुवाक्य और सुभाषित लिखे गए हैं । ऐसा एक सुभाषित है -- " दुनियामां बन्युं नथी क्युं घडियाळ , उल्टा कांटा फेरवी जे लावे दे भूतकाळ । " अर्थात् विश्व में अब तक ऐसी किसी घड़ी का निर्माण अभी तक नहीं हुआ है , जो कांटों को उल्टे घुमाकर पुनः भूतकाल को हमारे सम्मुख ले आवे । किन्तु स्वातंत्र्योत्तर काल में , इन पचास वर्षों में यही हुआ है ।

अंग्रेजी स्कूल बढ़ रहे हैं । ऐसे मां-बाप जिनके घर में कोई अंग्रेजी जानते तक नहीं है , अपने अपने बच्चों को अंग्रेजी स्कूलों में भेजते हैं और उनको एक प्रकार का मानसिक त्रास देते हैं । ऐसे बच्चे या तो बीच में ही पढ़ाई छोड़ देते हैं या फिर उनके मां-बाप को उनके ट्यूशन के लिए अतिरिक्त पैसे खर्च करने पड़ते

हैं । अंग्रेजी माध्यम का क्रेज़ और आग्रह अब इतना बढ़ गया है कि लोगों को उनके बच्चों को मातृभाषा नहीं आती इस बात की शर्म नहीं आती , इस पर वे फ़ख्र महसूस करते हैं । "रूकोगी नहीं राधिका" उपन्यास के उत्तर-भारतीय प्रवीण नामक एक व्यक्ति को उसके बच्चे की हिन्दी बोलने की आदत के छूट जाने पर , मलाल नहीं गर्व होता है ।[35] राष्ट्रभाषा हिन्दी की तो बड़ी दयनीय स्थिति है । इस संदर्भ में एक व्यंग्य-क्षणिका प्रस्तुत है —

" रात्रि में
कुछ भोज के पहले राष्ट्रभाषा पर जोरदार बहस छिड़ी थी
कुछ विचार
खूब गुर्राये , गुर्राये
पर और झूमते हुए व्यञ्जनों को चटकारते अपनी बाँहों में
चले गये वे लोग
दूसरे दिन अंग्रेजी के बीज बोने ।" [36]

अभिप्राय यह कि महानगरों में बच्चों की शिक्षा की समस्या बड़ी विकट है । इसके कारण भी कई बार कुछ माँ-बाप निरंतर तनावग्रस्त स्थिति में रहते हैं । ग्राम्य-परिवेश के उपन्यासों में तो "राग दरबारी" , " जहर चाँद का " [गंगाप्रसाद मिश्र] जैसे उपन्यास शिक्षा की समस्या को लेकर मिलते हैं , परंतु महानगरीय परिवेश के उपन्यासों में उसकी जरा-सारा चर्चा तो इधर-उधर मिल जाती है , परंतु गंभीरतापूर्ण चित्रण अभी उपलब्ध नहीं है । किसी मैत्रेयी या मन्नू को इस पर कलम चलानी चाहिए ।

कौमी दंगे :

हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य कम होने के स्थान पर बढ़ता जा रहा है । महानगरों के लोगों की चिन्ता का एक विषय यह भी है । किन्तु

"तमस" , " झूठा सच" , " प्रश्न और मरीचिका" , " एक टु पंखुड़ी की तेज धार " जैसे कुछ उपन्यासों को छोड़कर यह समस्या भी महानगरीय परिवेश के उपन्यासों में अनाकलित रही है । उपर्युक्त उपन्यासों में भी ज्यादातर भारत-पाकिस्तान विभाजन के समय के दंगों का चित्रण मिलता है , किन्तु इधर 1992 के बाद के विभाक्त वातावरण में घटित हो रहा है , उस पर अभी कोई अधिकृत उपन्यास आया नहीं है । " आधा गाँव" और " काला जल" जैसे उपन्यासों में इस समस्या को कुछ छूने का यत्न है , परंतु ये भी विभाजन के समय की बात करते हैं । सन् 1992 के बाद की घटनाओं पर बंगला लेखिका तस्लीमा नसरीन का जो सटीक और लोमहर्षक उपन्यास "लज्जा" मिलता है , ऐसा हृदय को हिला देने वाला कोई दूसरा उपन्यास नहीं मिलता ।

ऊपर-उल्लिखित उपन्यासों के अतिरिक्त "सूखा बरगद " (मंजूर एहतेशाम) , "मुखड़ा क्या देखे " (अब्दुल बिस्मिल्लाह) तथा "कलिकथा : वाया बाईपास " (अलका सरावगी) , "उन्माद" (भगवानसिंह) जैसे कुछ उपन्यासों में भी इस चर्चा को थोड़ा-बहुत उठाया है ।

"सूखा बरगद" का एक मुसलमान पात्र कहता है :" हम भरते हैं ताले डेमोक्रसी का । हर जगह भूमि-पूजन है , हर तरकीब में संस्कृत का गाना और देवी-देवताओं का नाच-कूद । कोई पूछे , हिन्दुओं के अलावा और किसीको इससे क्या मतलब ? हम हिन्दी तक राजी हुए तो कहने लगे अब तो तुम्हें संस्कृत भी सीखनी पड़ेगी । क्या होगा इस मुल्क में मुसलमानों का ।" [37]

इसी प्रकार "मुखड़ा क्या देखे " उपन्यास में एक मुस्लिम बच्चा कहता है :" हमारे स्कूल में न , शाम को शाखा लगती है , मुझे उसमें जाने नहीं देते । कहते हैं , तुम मियाँ हो , "शाखा" में

तुम्हारा क्या नाम ? और अब सारे लड़के हमें मियां-मियां , मुल्ला , कटुवा कहके चिढ़ाते हैं । बहुत बुरी-बुरी गालियां बकते हैं । मैं अब स्कूल नहीं जाऊंगा ।" [38]

तो अलका सरावगी के उपन्यास "कलिकथा: वाया बाईपास" में मुस्लिम-विमर्श का दूसरा पक्ष मिलता है :

"हिन्दू महासभा , राष्ट्रीय-स्वयंसेवक संघवाले , क्या गलत कहते हैं ? जब हजार सालों में भी हिन्दू और मुसलमानों को साथ रहना नहीं आया , तो अब आगे कैसे आ जाएगा ? .... मुसलमानों को कोई पछतावा नहीं है कि उन लोगों ने हिन्दुओं के मंदिरों को तोड़ा और हम लोग ठेका लें उनकी मस्जिदों की रक्षा का ?" [39]

डा. भगवानसिंह के उपन्यास "उन्माद" में उपन्यास के प्रोटैगनिस्ट मनोज सारस्वत की मान्यता है कि "जब दंगे होते हैं तो उनके मोर्चा संभालनेवाले तो वे ही लोग होते हैं जिन्हें हिन्दुओं में छोटी और नीची जातियां कहा जाता है और मुसलमानों में रजील और कमीन ।" [40] और इसके कारणों की व्याख्या भी उसी पात्र के मुंह से करवायी है : "अपने उसी समाज के ऊंचे लोगों की नज़र में कम-से-कम कुछ घण्टों के लिए ऊपर उठ जाने का मोह भी हो सकता है । अपने दबे हुए अपमान और उपेक्षा का बदला लेने की इच्छा भी हो सकती है । ... साथ ही यह भी हो सकता है कि दंगे भड़कने पर पहचान के दूसरे सारे कोण लुप्त हो जाते हैं और बची रहती है अकेली मजहबी पहचान ।" [41]

इस संदर्भ में डा. वीरेन्द्र यादव के निम्नलिखित विचार ध्यातव्य रहेंगे : "दलित व निम्न जातियों की साम्प्रदायिक दंगों में हिस्सेदारी को समझने के लिए आवश्यक है उनकी जीवन शैली व उस सामाजिक आधार की पहचान , जो बेरोजगारी , दारुण

जीवन-स्थितियों व आपराधिक प्रवित्तियों की जकड़बन्दी के कारण अपनी स्वतंत्र भूमिका का निर्वाह करने में अक्सर असफल रहती है । फुटपाथ , झुग्गी-झोंपड़ियों व मलिन बस्तियों में रहने वाले साम्प्रदायिक दंगों में किस प्रकार धर्मान्ध व आपराधिक प्रवित्तियों ~~हमार~~ द्वारा कच्चे माल की तरह इस्तेमाल होते हैं , इसके पर्याप्त संकेत मुंबई के दंगों के बारे में प्रस्तुत श्रीकृष्ण आयोग की रिपोर्ट व विभूतिनारायण राय की पुस्तक " कम्बैटिंग कम्युनल कांफ्लिक्ट्स" में देखे जा सकते हैं ।" 42

~~हमार~~ डा॰ वीरेन्द्र यादव ने जो कहा है उसके सन्दर्भ में इस साल (2002 फरवरी 27) गुजरात में हुए दंगों को रेखांकित किया जा सकता है । उसमें भी पिछड़ों की , विशेषतः आदिवासी जातियों की अहम भूमिका थी ।

माफिया डॉनों का मानसिक त्रास :

"भाई" शब्द जब किसीके पीछे लगता है तो एक सीधे-सादे "गुजराती भाई " का बोध कराता है , जैसे विकास भाई , प्रकाश-भाई आदि आदि ; परंतु यही "भाई" शब्द यदि किसीके आगे लग जाए तो बड़ा खतरनाक हो जाता है । यह भाई शब्द आतंक का दूसरा नाम हो जाता है और उसका नाम सुनते ही लोगों के टट्टी-पिशाब निकल आते हैं । आजकल महानगरों में इनका बड़ा आतंक फैला हुआ है । इनका संबंध आतंकवादियों से भी कई बार होता है । महानगरीय जीवन ~~मार~~ के रक्तचाप को बढ़ाने वाला एक आयाम यह भी है ।

यद्यपि इस विषय पर अनेक फिल्में बनी हैं , किन्तु बहुत कम महानगरीय परिवेश के उपन्यासों में इसका चित्रण मिलता है । "बोरीवली से बोरीबन्दर तक " , " मुरदाघर " तथा "ढहती दीवारें जैसे कुछेक उपन्यास हैं जिनमें इनकी प्रवृत्तियों और

आतंक का विस्तृत ब्यौरा मिलता है । "ढहती दीवारें" इस अछूते विषय पर होने के कारण विशेष ध्यान खींचता है ।

(4) शैक्षिक- संस्थाओं में हो रहा आर्थिक-शोषण :

शैक्षिक-संस्थाओं में कुछ, विशेषतः प्राथमिक और माध्यमिक में, शिक्षक महिलाओं का यौन-शोषण होता है, उसका चित्रण तो अनेक उपन्यासों में मिलता है ; परंतु महिला तथा पुरुष दोनों का जो आर्थिक-शोषण होता है, उसका बहुत कम चित्रण उपन्यासों में मिलता है । इन स्कूलों में उनको सरकार द्वारा निर्धारित वेतन-मान (ग्रेड या स्केल) नहीं मिलता, पर उससे बहुत कम मिलता है । कहीं-कहीं उनको अधिक वेतन पर हस्ताक्षर करवाए जाते हैं और वेतन बहुत कम दिया जाता है, तो कहीं-कहीं बड़ी रकम अग्रिम-राशि के रूप में उनसे ली जाती है । गुजरात में तो उनके शोषण का एक सीधा रास्ता सरकार ने ही अख्तियार कर लिया है । अब शिक्षकों को जो लिया जाता है, उनके नियमित वेतन-मानों पर नहीं, बल्कि उनको "विद्या-सहायक" या "सरस्वती-सहायक" के रूप में लिया जाता है, निश्चित पगार पर, न उनको इन्क्रीमेण्ट मिलता है न कुछ और ऐसा पांच वर्षों तक चलता है । पांच साल के बाद उनको नियमित पगार पर लिया ही जाएगा उसकी कोई गारण्टी नहीं है । अब कालेजों में भी "बृहस्पति-सहायकों" की नियुक्तियां होने लगे तो कोई आश्चर्य नहीं । वैसे कहीं-कहीं स्कूलों तथा कालेजों में केवल उनकी नियुक्ति होती है, उनका चयन होता है, जो बड़ी तगड़ी रकम दे सकते हैं । इस प्रकार नौकरियों को भी खरीदा जा रहा है । यथा-

"सिर्फ डिग्री ही नहीं पुख्ता होना चाहिए
मंत्रियों के यंत्र का इन्तजाम होना चाहिए
ज्ञान को है कौन पूछता, ज्ञान गलियों में बिके
काम पाने के लिए अब दाम होना चाहिए ।"[43]

परन्तु इस आयाम का चित्रण उपन्यासों में नहींवत हुआ है । यह अनाकलित रह गया है । किसी लेखक या लेखिका को इस पर कलम चलानी चाहिए , क्योंकि "कलम के सिपाही अगर चुप रहे तो वतन के ये नेता वतन बेच देंगे । "

निष्कर्ष :

अध्याय के ~~समग्रxxxxxx~~ समग्रावलोकन से हम निष्कर्षतः कह सकते हैं कि युग्मक और एकल परिवार की स्थिति , असुरक्षा की भावना , संवेदना का भौथरापन , निरंतर भागती-दौड़ती जिन्दगी, नाना प्रकार के प्रदूषण , नैतिक या सांस्कृतिक प्रदूषण , यातायात की परेशानियाँ , आवास की समस्या , बच्चों की शिक्षा की समस्या , कौमी दंगे , माफियाडोनों का जाल , शैक्षिक संस्थाओं में हो रहे आर्थिक शोषण के कारण महानगरीय परिवेश के लोगों पर तनावग्रस्तता और मानसिक दबाव दृष्टिगोचर ~~xxxx~~ होते है और जिसके कारण उन्हें विविध प्रकार की शारीरिक और मानसिक बीमारियों का शिकार होना पड़ता है ।

=====xxxxxx =====

:: सन्दर्भानुक्रम ::

{1} द्रष्टव्य : आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय परिवेश के उपन्यास :
: डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 92-97 ।
{2} तीसरा आदमी : पृ. 82 ।
{3} हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी
उपन्यास : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 251 ।
{4} डाक बंगला : पृ. 124 ।
{5} विवेक के रंग : सं. डा. देवीशंकर अवस्थी : पृ. 371 ।
{6} पचपन खंभे लाल दीवारें : पृ. 31-32 ।
{7} संदर्भ-3 के अनुसार : पृ. 244 ।
{8} नदी फिर बह चली : पृ. 230 ।
{9} संदर्भ-3 के अनुसार : पृ. 341 ।
{10} वे दिन : पृ. 33 ।
{11} तीसरा आदमी : पृ. 83 ।
{12} घनानंद कवित्त : सं. आ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र पृ. छंद - 82
{13} ढलती दीवारें : मीना दास : शुरू दो शब्द से ।
{14} वही : पृ. 99 ।
{15} सूखे सेमल के कुन्तों पर : पृ. 37 ।
{16} वे दिन : पृ. 107 ।
{17} " हिन्दी उपन्यास : पहचान और परख " : डा. इन्द्रनाथ
मदान : उद्धृत द्वारा श्रीकान्त शर्मा : पृ. 226 ।
{18} अंधेरे बन्द कमरे : पृ. 101 ।
{19} अठारह सूरज के पौधे : पृ. 28 ।
{20} बिजली के फूल : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 11 ।
{21} अठारह सूरज के पौधे : पृ. 118 ।
{22} वही : पृ. 21 ।
{23} नावें : पृ. 11 ।

[24] अपने पराए : शशिभूषण सिंहल : पृ. 140 ।

[25] कर्करेखा : शशिप्रभा शास्त्री : पृ. 10 ।

[26] हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला : पृ. 169-170 ।

[27] निस्संगता : कृष्णनारायण सिंह : पृ. 74 ।

[28] उन्माद : डा. भगवानसिंह : पृ. 313 । [29] वही: पृ. 342

[30] परछाइयों के पीछे : शशिप्रभा शास्त्री : पृ. 257 ।

[31] वे दिन : पृ. 24 [32] वही : पृ. 24 [33] वही: पृ. 27 ।

[34] मुरदाघर : पृ. 174 ।

[35] रुकोगी नहीं राधिका : पृ. 104-105 ।

[36] सूखे सेमल के वृन्तों पर : पृ. 66 ।

[37] सूखा बरगद : मंजूर एहतेशाम : पृ. 145-146 ।

[38] मुखड़ा क्या देखे : डा. अब्दुल बिस्मिल्लाह : पृ. 123 ।

[39] कलिकथा - वाया बाइपास : अलका सरावगी : पृ. 171 ।

[40] उन्माद : पृ. 173 ।

[41] वही : पृ. 173 ।

[42] आलोचना : सहस्राब्दि अंक : अप्रैल-जून : 2000 : पृ. 200-201 ।

[43] सूखे सेमल के वृन्तों पर : पृ. 62 ।

==== XXXXX ======